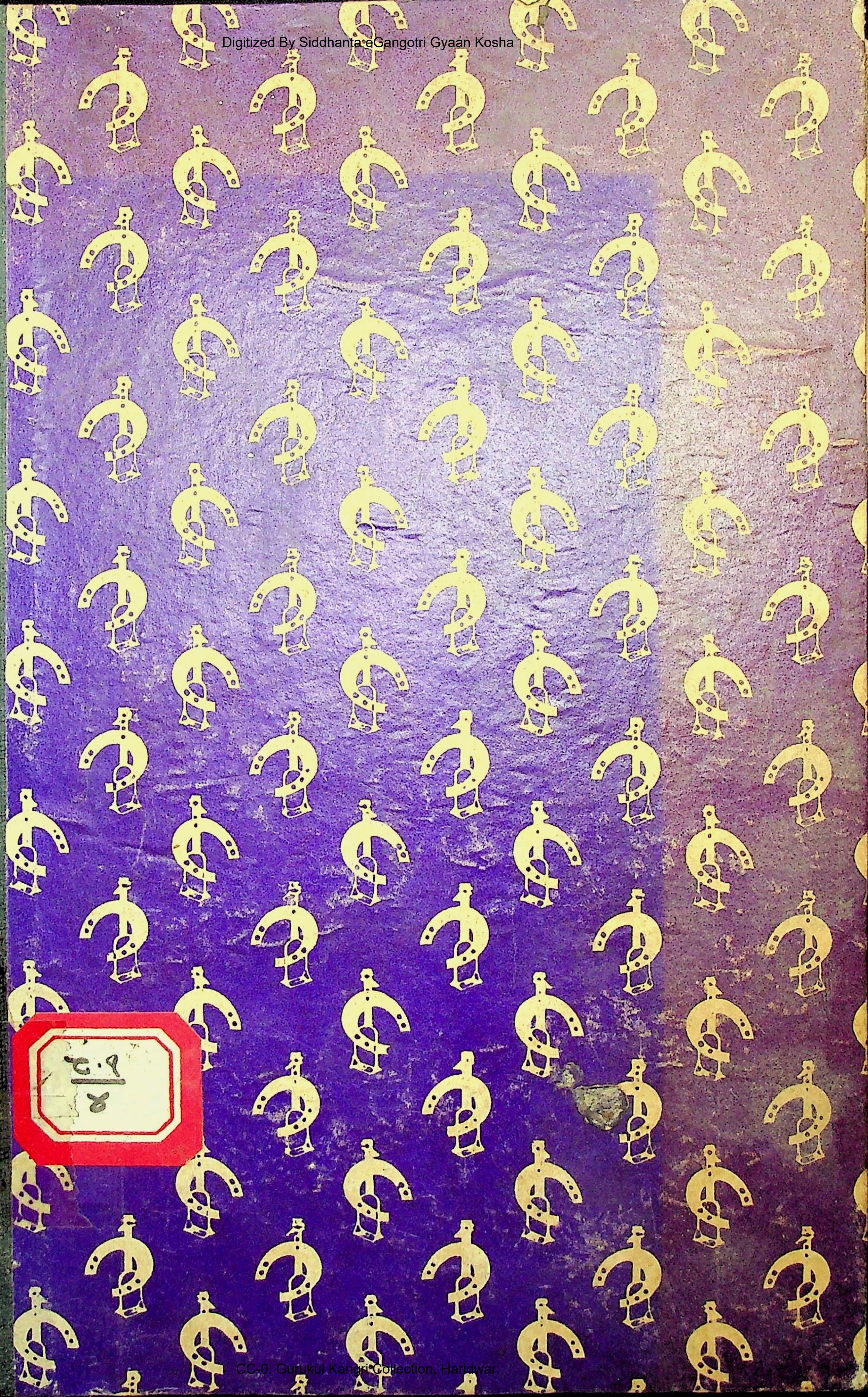
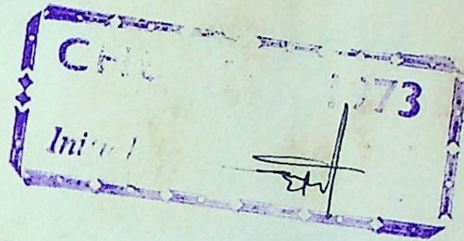




दुलारे-दोहावली



दुलारेलाल भार्गव



दुलारे-दोहावली

काका - [illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible]
को
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] } [illegible]
२५।१२।३४

दुलारे-दोहावली

[तृतीयावृत्ति]

प्रणेता

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(गंगा-पुस्तकमाला और सुधा-संपादक)

मिलने का पता

गंगा-ग्रंथागार

लखनऊ

सं० १९९१

राजसंस्करण ३॥) साधारण संस्करण २॥)



प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

शाखाएँ और सोल एजेंसियाँ—

गंगा-ग्रंथागार	सिविल लाइंस, अजमेर
गंगा-ग्रंथागार	१९५।१, हरीसन रोड, कलकत्ता
गंगा-ग्रंथागार	सराफ़ा बाज़ार, सागर
गंगा-ग्रंथागार	कोटगेट, बीकानेर
गंगा-ग्रंथागार	नीलकंठ स्ट्रीट, दरियागंज, दिल्ली
गंगा-ग्रंथागार	४२८, लैमिंगटन रोड, बंबई
गंगा-ग्रंथागार	जसवंत-बिल्डिंग्ज़, जोधपुर

तथा प्रचारक—सैकड़ों जगह

प्रथमावृत्ति चैत्र, सं० १९९१
द्वितीयावृत्ति ज्येष्ठ, सं० १९९१
तृतीयावृत्ति भाद्रपद, सं० १९९१

मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

दुलारे-दोहावली



परलोकवासी पंडित प्यारेलालजी
(पुस्तक-प्रणेता के पिता)

परलोकवासी

पूज्य-पाद

परमप्रिय पिताजी

(पंडित प्यारेलालजी)

के

पवित्र पद-पद्मों पर

पुस्तक-प्रवेश

दुलारे-दोहावली



परलोकवासी पंडित प्यारेलालजी
(पुस्तक-प्रणेता के पिता)

परलोकवासी

पूज्य-पाद

परमप्रिय पिताजी

(पंडित प्यारेलालजी)

के

पवित्र पद-पद्मों पर

पुस्तक-प्रणेता

विज्ञप्ति

[प्रथमावृत्ति से]

हिंदी-संसार में महाकवि बिहारीलाल की कितनी ख्याति है, यह किसी हिंदी-भाषा के जानकार से छिपा नहीं। कितने ही विद्वान् समालोचकों का मत है कि वह हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। उनके बाद आज तक किसी ने भी वैसा चमत्कार नहीं पैदा किया था, परंतु यह कलंक अब दूर होने को है। अभी कुछ ही विद्वान् ऐसी सम्मति रखते हैं कि सुधा-संपादक कविवर श्रीदुलारेलालजी भार्गव के दोहे महाकवि बिहारीलाल के दोहों की टक्कर के होते हैं, और बाज़-बाज़ ख़ूबसूरती में बढ़ भी गए हैं; परंतु यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि अचिर भविष्य में, जब कविवर श्रीदुलारेलालजी भार्गव के भी कई सौ ऐसे ही दोहे प्रकाशित हो जायँगे, लोगों को उनकी श्रेष्ठता का लोहा मानना होगा। कहा जाता है, ब्रजभाषा में अब पहले की-सी कविता नहीं लिखी जाती, परंतु 'दुलारे-दोहावली' ने इस कथन को बिलकुल भ्रम साबित कर दिया है। हिंदी के वर्तमान कवियों और समालोचकों में जो अग्रगण्य माने जाते हैं, उनमें से कोई-कोई मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि कविवर श्रीदुलारेलाल वर्तमान समय में ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, और उनकी दोहावली ब्रजभाषा-साहित्य की वर्तमान सर्वोत्तम कृति। इसकी ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली, शृंगार और करुण-रस के कोमलतम मनोभावों की मंजुल, सजीव कल्पना-मूर्तियाँ, वीर-रस की ओजस्विनी सूक्तियाँ, देश-प्रेम का छलकता हुआ प्याला, शांत-रस की सुधा-धारा, रसानुकूल अलंकृत भाषा का मुहावरेदार प्रयोग और संक्षेप में कहने का अद्भुत कौशल आदि एक ही जगह देखकर जी प्रसन्न हो जाता है। निस्संदेह कविवर श्रीदुलारेलालजी ऐसी रचनाओं के लिये हम साहित्यिकों के धन्यवाद के पात्र हैं।

चैत्र-कृष्ण १,
१९९१ } सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'



भूमिका

१. काव्य-साहित्य और उसके अंग

साहित्य

जो हित के साथ-साथ वर्तमान है, वह हुआ सहित, और जिसमें सहित का भाव हो, वह हुआ साहित्य । इस प्रकार साहित्य वह है, जिसमें हितकारी भावों का वर्णन हो । सभ्य-संसार साहित्य के महत्त्व को भली भाँति जानता है । सच तो यह है कि किसी राष्ट्र अथवा जाति का उत्कर्ष वा अपकर्ष उसके साहित्य द्वारा ही विदित होता है । यद्यपि साहित्य का उपर्युक्त अर्थ सर्वमान्य है, पर यथार्थ में किसी जाति अथवा राष्ट्र के पास ग्रंथ-समूह का जो संग्रह उसके शताब्दियों से संचित ज्ञान एवं उसकी भावनाओं को दिखलानेवाला होता है, वही उसका साहित्य कहा जाता है । ऐतिहासिक ग्रंथों में साहित्य-शब्द का प्रयोग ऐसे ही अर्थ में किया जाता है । इसके सिवा काव्य के रीति-ग्रंथों को भी रूढ़ि से साहित्य-ग्रंथ कहते हैं ।

साहित्य के भेद

स्थूल रूप से साहित्य के दो मूल विभाग हैं—(१) ज्ञान-प्रधान और (२) भाव-प्रधान । ज्ञान-प्रधान साहित्य के अंतर्गत दर्शन, इतिहास, भौतिक विज्ञान, गणित, ज्योतिष एवं अर्थ-शास्त्रादि की गणना है, जिसे विज्ञान कहते हैं । भाव-प्रधान साहित्य के अंतर्गत काव्य है । साहित्य के ये दोनो अंग भिन्न-भिन्न मार्गावलंबी होने से इनके कार्य-क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न हैं । वैज्ञानिक लोग विज्ञान द्वारा ब्रह्मांड में जो शृंखला देखते हैं, उसका अनुभव कवि अनुभूति द्वारा करते हैं । उस शृंखला में जो विलक्षण आनंददायक सौंदर्य है, वही कवियों का वर्णनीय विषय होता है । यह यथार्थ है कि साहित्य की सृष्टि सत्य का रूप स्पष्ट करने के लिये है, और वैज्ञानिक एवं कवि सत्य की ही खोज में लगे रहते हैं, पर वैज्ञानिक सत्य से काव्य के सत्य में अनुभूति की विशेषता रहती है । इसी से विज्ञान से कविता पृथक् है । विज्ञान की भित्ति बुद्धि है, और कविता की भित्ति अनुभूति । विज्ञान का जन्म-स्थान मस्तिष्क है और कविता की जन्मभूमि हृदय । विज्ञान में तर्क का साम्राज्य रहता है, और कविता में कल्पना का आधिपत्य । विज्ञान का उपादान बहिर्जगत् है, और कविता का कार्य-क्षेत्र अंतर्जगत् ।

काव्य और सत्य

अधिकांश व्यक्तियों के लिये सत्य का रूप बाह्य प्रकृति तक ही परिमित रहता है ।

अंतर्प्रकृति—अंतर्जगत्—की घटनाओं को तो वे तब समझें, जब पार्थिव जगत् के घात-प्रतिघातमय घटना-चक्रों के कठिन पाश से क्षण-भर के लिये ही मुक्ति प्राप्त करने का सौभाग्य पाने में समर्थ हो सकें। जो लोग थोड़ी देर के लिये बाह्य संसार से संबंध-विच्छेद कर अंतर्जगत् की ओर अंतर्दृष्टि से देखने में सक्षम होते हैं, वे ही—केवल वे ही—अंतर्जगत् की घटनाओं में सत्य की झाँकी देख पाते हैं। शेष मानव-समुदाय को अंतर्जगत् की घटनाओं में सत्य का स्वरूप देख लेना दुर्लभ है। शस्त्राघात से मनुष्य का मर जाना या लकड़ी की चोट से घायल हो जाना ऐसा सत्य है, जिसे सभी मान लेंगे ; परंतु किसी अदृष्ट कारण से मनुष्य के भावना-सागर में तूफ़ान उठने और उससे उसके उत्थान और पतन में जो सत्य है, उसका दर्शन कर लेना सभी के लिये साध्य नहीं। वैज्ञानिकों के बाह्य प्रकृति-संबंधी आविष्कारों की सत्यता में किसी को संदेह नहीं हो सकता; परंतु कवि जब अपनी कल्पना द्वारा अंतर्जगत् का गूढ़ रहस्य समझाने लगता है, तब कुछ लोग संदिग्ध-चित्त हो सकते हैं। कवि-कल्पना के साथ सत्य के सामंजस्य का जो गूढ़ मेल रहता है, उसे सभी लोग नहीं देख पाते। यह सत्य है कि कवि मनोभावों को प्रत्यक्ष शब्द-चित्रों में चित्रित करने के लिये जिन काल्पनिक पात्रों को उपस्थित करता है, वे सत्य नहीं होते ; परंतु उन काल्पनिक पात्रों का अंतर्जीवन सत्य होता है। यथार्थ में कवि सवकालीन सत्य की खोज करता है। वह मनोभावों की जिन काल्पनिक सजीव मूर्तियों के शब्द-चित्र खींचता है, उनकी सभी बातें ऐसी होती हैं, जो मनुष्य-मात्र पर घट सकती हैं, अतएव यह स्वीकार करना पड़ता है कि उनमें सत्य होता है। विज्ञान में प्राकृतिक अनंत सत्यों का दिग्दर्शन कराया जाता है, और साहित्य में मानसिक सत्य की अनुभूति का मनोरम निदर्शन। किंतु इसमें संदेह नहीं कि दोनो का लक्ष्य एक ही है, क्योंकि दोनो ही सृष्टि की शृंखला की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। फिर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार विज्ञान प्रत्येक प्राकृतिक व्यापार का वर्णन करता है, उस प्रकार काव्य नहीं करता। जगत् में ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जो कुत्सित हैं। विज्ञान उनको चीर-फाड़कर दिखलाता है, पर कवित्व उन्हें छूता तक नहीं। कविता कला है, और कला कुत्सित का चित्रण नहीं करती। जो मधुर है, जो सुंदर है, और जो हृदय में सुखकर अनुभूति का संचार करता है, उसी का वर्णन करना कला का उद्देश्य रहता है। कभी-कभी तो काव्य वैज्ञानिक सत्य का उल्लंघन करके ही अपना स्वत्व स्थापित करता है। विज्ञान की दृष्टि से लू का चलना प्रकृति की एक क्रिया-विशेष है, जो समय-विशेष पर प्राकृतिक नियमानुसार होती है। पर कवि तो प्रत्येक विषय का, उसे आत्मानुभूति के साथ मिलाकर, विलक्षण ढंग से कल्पनामय करके, वर्णन करता है।

बिहारी लिखते हैं—

"नाहिँन ए पावक-प्रबल लुएँ चलतिँ चहुँ पास,
मानहुँ बिरह बसंत के ग्रीषम लेति उसास।" (बि० स०)

काव्य और आनंद

यथार्थ में प्रेम, करुणा, हर्ष, शोक, हास, अभिलाषा, लज्जा और क्रोध आदि ही सात्विक भावों की अवस्थाएँ हैं, जो जीव के हृदय में परंपरा से रहती हैं। इन भावों के प्रकाशन में ही काव्य का गौरव है। आत्मा से प्राणित जो कोषत्रयात्मक सूक्ष्म शरीर है, उसमें हम श्रेष्ठ काव्य के अनुशीलन द्वारा सद्भावों का संग्रह करने में समर्थ होते हैं। यद्यपि दर्शन, गणित, ज्योतिष एवं इतिहास आदि विज्ञान-मूलक साहित्य से ज्ञान प्राप्त कर हम ज्ञानी बन सकते हैं, पर आनंद की ओर काव्य ही ले जाता है। यह निर्विवाद है कि ज्ञान की अपेक्षा आनंद-जनक भाव प्रधान है, इसी से सभी ज्ञानी आनंद-प्राप्ति के हेतु प्रयत्न करते हैं। स्मरण रहे, विज्ञानमय कोष के भीतर ही उससे परे आनंदमय कोष है। काव्य का प्रभाव उस पर सीधा पड़ता है। इसी से भाव-व्यंजक, आनंद-प्रद साहित्य अर्थात् काव्य को प्रधानता दी जाती है। तात्पर्य यह कि काव्य ही श्रेष्ठ और प्रधान साहित्य है।

काव्य स्वयं हेतु है। वह अन्य हेतुओं का साधन अवश्य है। और, इससे चरित्र-सुधार, धर्म-शिक्षा, परोपकार एव जातीयता आदि के उपदेश-रूप अनेक आवश्यक कार्य साध्य हो जाते हैं, परंतु यहीं सीमाबद्ध न होकर वह स्वयं मनोरंजक होता है। पाशविक प्रवृत्तियों से निश्चित होकर मनुष्य साहित्य-संगीत-कलावाली ऊपरी मंज़िल में पदार्पण करता है, और साथ ही यह अनुभव करता है कि यह आनंद पाशविक आनंद से परे एवं श्रेष्ठतर है, जिसे बुद्धिजीवी मनुष्य ही भोग सकता है। यथार्थ में मनुष्य कहलाने का गौरव हमें तभी है, जब हम इस आनंद का अनुभव कर सकें। आवश्यकता की अवस्था के पश्चात् साहित्य जब मनोरंजनवाली अवस्था में पहुँचता है, तब काव्य उसका अंग बन जाता है। अनेक विषय—जैसे नीति एवं राष्ट्रीयता तथा धर्मोपदेश आदि—कल्याण के लिये आवश्यक हैं, पर काव्य को इस प्रकार सीमाबद्ध करके उसका स्वत्व भ्रष्ट करना तथा उसके पवित्र उच्चासन से उसे पतित करना अनुचित है। काव्य को आवश्यकतावाद के संकीर्ण क्षेत्र में बाँधना मानो उसे संकीर्णता से दूषित कर पार्थविकता से कलंकित करना है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि काव्य इन बातों के प्रतिकूल है, या इन विषयों पर काव्य-रचना न हो, किंतु यह कि काव्य को इतने में ही सीमाबद्ध करना अनुचित है। काव्य में विश्वविमोहिनी बुद्धि का कौतूहल रहता है, जिसका संबंध हृदय से रहता है, और प्रायः मनोरंजन ही काव्य को अभिप्रेत है। पूर्वीय एवं पश्चिमीय, सभी साहित्यिक विवेचकों ने कविता का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन ही माना है। यहाँ विस्तार-भय से उनके मतों का उल्लेख करने में असमर्थ हूँ। आर्य-साहित्य में काव्यानंद को ब्रह्मानंद का सहोदर माना है।

काव्य की उपयोगिता

काव्य की उपयोगिता सृष्टि में व्यापक ब्रह्म के अनेक रूपों के साथ मनुष्य की जीवात्मा की अंतरंग रागात्मिका प्रकृति का सामंजस्य स्थापित करने में है। काव्य हमारे मनोभावों को उच्छ्वसित कर हमारे जीवन में एक नया जीवन डाल देता है। वह हमारे हृदय को

विशाल बनाता है, जिससे हमें यह अनुभव होने लगता है कि सृष्टि की संपूर्ण वस्तुएँ हमारे ही आनंद से आनंदित हो रही हैं। पक्षी हमारे लिये ही राग अलापते हैं। सूर्य, चंद्र, ग्रह तथा नक्षत्र आदि हमारे हृदय की गति के अनुसार ही नाच रहे हैं। प्रकृति हमारे ही आनंद में आनंद और हमारे ही दुःख में दुःख प्रकट करती है। हमें जान पड़ता है, यह शोभामय दृश्यमान जगत्, जिसके द्वारा हम अपने सौंदर्य के आदर्श को प्रत्यक्षीभूत कर रहे हैं, हमसे भिन्न नहीं। यदि हमसे इसका भिन्नत्व होता, तो फिर यह सागर अपनी लहरों से हमारी मन-नौका को चलायमान कैसे करता ? यथार्थ में तो मानव-जीवन के व्यापकत्व की अनुभूति उत्पन्न करके मनुष्य की मनोवृत्तियों का सृष्टि के साथ उचित सामंजस्य स्थापित करना ही काव्य की उपयोगिता है। जब मनुष्य के व्यापार का क्षेत्र जटिल होता जाता है, तब उसका हृदय भी स्वार्थपरायणता से संकुचित होता जाता है, और अशेष सृष्टि से उसके रागात्मक संबंध के विच्छेद होने की आशंका बढ़ती जाती है। ऐसी अवस्था में काव्य ही सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध की रक्षा कर उसके विकास में सहायक होता है। अँगरेज़ी-भाषा के सुप्रसिद्ध विवेचक विद्वान् महाकवि शेली ने ठीक ही कहा है—

"Poetry preserves from decay the visitations of devinity in man."

अर्थात्—"कविता मनुष्य में दिव्य भावों की प्रगतियों को निर्बल पड़ने से बचाती है।"

साथ ही विश्व-बंधुत्व के उदार भावों को व्यावहारिक स्वरूप देने की शक्ति केवल काव्य में ही होती है। विरोधी राष्ट्रों के प्रतिभाशाली कवियों के विचारों में जो समानता, भावों में जो एकता और स्फूर्तियों में जो समानता पाई जाती है, उससे भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के मनुष्यों के हृदय एक दूसरे के निकट पहुँचकर मिल जाते हैं। इस प्रकार कविता मनुष्य को यथार्थ मनुष्यता से युक्त करती है। काव्य से क्या लाभ है, इसके विषय में वाग्देवतावतार श्रीमम्मटाचार्यजी लिखते हैं—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ;
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।

(काव्यप्रकाश)

अर्थात्—"काव्य यश, द्रव्य-लाभ, व्यवहार-ज्ञान, दुःख-नाश, शीघ्र परमानंद और कांता के समान मधुरता-युक्त उपदेश के लिये है।"

केवल यही नहीं, अपितु काव्य धर्म, अर्थ और काम के अतिरिक्त मोक्ष-प्राप्ति का भी हेतु है। इसके विषय में महापात्र कविराज विश्वनाथजी ने ठीक ही कहा है—

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ;
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्।

(साहित्यदर्पण)

साहित्य-शास्त्र और काव्य

हम इस सृष्टि की प्रत्येक बात में एक विलक्षण शृंखला पाते हैं। प्रकृति की प्रत्येक बात में सुशृंखलता है, उच्छृंखलता कहीं भी नहीं। उत्पत्ति, जीवन और मरण में नियम है, वनस्पतियों में नियम है, जड़ और चेतन सबमें नियम है। अनियम कहीं भी नहीं। कला में भी नियम है। संगीत में नियम है, चित्र-कला में नियम है, और नियम-बद्ध होने ही से उनकी विशुद्ध शोभा और उनका उत्कर्ष है। कविता भी कला है, और इसमें भी नियम है। अनेक सज्जन आज धृष्टता करके कहने लगे हैं कि कवि तो निरंकुश रहते हैं, उन्हें नियम का बंधन नहीं चाहिए। इसके विषय में सुप्रसिद्ध कविश्रेष्ठ स्वर्गीय द्विजेंद्रलाल राय ने अपने 'कालिदास और भवभूति'-नामक आलोचनात्मक ग्रंथ में लिखा है—"गान की ताल, नृत्य की भाव-भंगी, कविता के छंद और सेना की चाल इत्यादि सभी बड़ी वस्तुओं के कुछ बँधे हुए नियम होते हैं। यह बात नहीं कि निरंकुश होने के कारण कवि लोग नियम के शासन को मानने के लिये सर्वथा बाध्य न होते हों। नियम होने के कारण ही काव्य और नाटक सुकुमार कला हैं। नियमबद्ध होने के कारण ही काव्य में इतना सौंदर्य है।" (पृष्ठ १६)

तात्पर्य यह कि प्रत्येक कला के कुछ स्थायी नियम होते हैं। फिर देश-काल-पात्र के भेद से इन नियमों में कुछ अंतर भी होता है। भारतीय आर्य-साहित्य में काव्य-कला पर सहस्रों की संख्या में रीति-ग्रंथ हैं, जो बड़े ही रहस्यमय और वैज्ञानिक सत्यों से परिपूर्ण हैं। इस शास्त्र को, जिसमें काव्य-कला के नियमों तथा स्वरूप की मीमांसा की गई है, साहित्य-शास्त्र या अलंकार-शास्त्र कहते हैं। इसमें बड़ी ही उत्कृष्ट विवेचना है, जिसे समझकर पढ़ने से बुद्धि में बल आता है, और जिससे कला का आदर्श प्रत्यक्षीभूत होता है। ध्यान रहे, साहित्य-शास्त्र काव्य-कला का वैज्ञानिक विश्लेषण करनेवाला होने से काव्य का संयोजक, नियामक और हितकारक है, एवं साहित्य-शास्त्र की कसौटी पर काव्य परखा जाता है।

रस

साहित्य-शास्त्र का प्रधानतया प्रतिपाद्य विषय रस है, एवं छंद, अलंकार तथा गुण आदि को रस के अंग बनाकर इनका निरूपण किया गया है। हमारे सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक साहित्य-शास्त्र ने रस ही को काव्य की आत्मा एवं अलंकारादि को इस रस-अंगी का अंग माना है। महाभारत-काल के पूर्व—आज से लगभग ५५०० वर्ष पूर्व—के आद्य साहित्याचार्य भगवान् भरत मुनि से लेकर मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ के राजत्व-काल के माननीय साहित्याचार्य पंडितराज जगन्नाथ 'त्रिशूली' तक के सैकड़ों धुरंधर साहित्याचार्यों ने संस्कृत में एवं श्रीकेशवदासजी से लेकर आज तक के सैकड़ों साहित्याचार्यों ने हिंदी में रस को काव्य की आत्मा बतलाते हुए बड़े समारोह से रस का निरूपण किया है। इन महानुभावों का मत है कि रस ब्रह्मानंद का सहोदर है। यह ब्रह्मवत् अखंड, चित्स्वरूप तथा लोकोत्तर आनंददायी है। जिस प्रकार 'अयमात्मा ब्रह्म', 'सत्यं ज्ञानमनन्तं

ब्रह्म' तथा 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कदाचन' आदि श्रुतियाँ ब्रह्म का निरूपण करती हैं, उसी प्रकार 'रसो वै सः' वा 'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनंदी भवति' आदि श्रुतियाँ रस का निरूपण करती हैं, एवं जिस प्रकार ब्रह्म स्वानुभव संवेद्य है, उसी प्रकार रस भी स्वानुभव संवेद्य है। इनमें अंतर इतना ही है कि ब्रह्म निर्विषय वस्तु है, और रस सविषय। ब्रह्म योगिगम्य है, और रस सहृदयगम्य।

कवि अपने काव्य में जिन-जिन मनोविकारों या मनोभावों का वर्णन करता है, उन-उन मनोविकारों के कारण, कार्य और उनके सहकारी अपर मनोविकार का उस काव्य में यदि पूर्ण और यथायोग्य उद्भावन करता है, तो ऐसे काव्य के पढ़ने या सुनने से लोगों के अंतःकरण में भी वे ही मनोविकार जाग्रत् होते हैं, और स्पष्ट जान पड़ने लगता है कि वे लोग उनका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। इस प्रकार का भास होने से उस समय जो विलक्षण आनंद होता है, उसे ही रस कहते हैं। नाट्यशास्त्र में भगवान् भरत मुनि कहते हैं—"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।" अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का (स्थायी भाव से) संयोग होने पर रस की निष्पत्ति होती है। श्रीभट्ट लोल्लट ने इसी सूत्र का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

"स्थायिनां विभावेनोत्पाद्योत्पादकभावरूपादनुभावेन गम्यगम्यकभावरूपाद्व्यभिचारिणा पोष्यपोषकभावरूपात्संबंधाद्रसस्यनिष्पत्तिरभिव्यक्तिः पुष्टिश्चेत्यर्थः।"

अर्थात्, स्थायी भाव का विभाव से उत्पाद्य और उत्पादक, अनुभाव से बोध्य और बोधक एवं संचारी भाव से पोष्य और पोषक संबंध होने से रस की उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और पुष्टि होती है। निष्कर्ष यह कि प्रधान मनोविकार को स्थायी भाव, उसके कारण को विभाव, उसके कार्य को अनुभाव और उसके सहकारी अपर मनोविकार को व्यभिचारी भाव कहते हैं। विभाव दो प्रकार का होता है—(१) आलंबन और (२) उद्दीपन। जिसका आलंबन करके स्थायी भाव की उत्पत्ति हो, उसे आलंबन विभाव और जिससे स्थायी भाव उद्दीप्त हो, उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। अनुभाव भी (१) मानसिक, (२) कायिक और (३) सात्विक भेद से तीन प्रकार के होते हैं। सात्विक भाव यद्यपि अनुभाव ही हैं, पर इनकी गणना अनुभावों से पृथक् भावों में की जाती है। इसका कारण यह है कि रस का प्रकाशक अंतःकरण का विशेष धर्म 'सत्त्व' है। माननीय आचार्य विद्यानाथजी ने लिखा है—

"परगतसुखादिभावनया भावितांतःकरणत्वं सत्त्वम्।" (प्रतापरुद्रीय)

परगत अर्थात् दूसरे में रहते हुए भावों के ध्यान से वासना-युक्त किए हुए अंतःकरण को सत्त्व कहते हैं। उक्त सत्त्व के अनुभावों को सात्त्विक कहते हैं।

आद्याचार्य भगवान् भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में मानव के मन में उठनेवाले संपूर्ण मनोविकारों की संख्या ४९ निर्देश की है। हमारे आर्य-साहित्य के अन्यान्य महामति आचार्यों ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके बहुमत से भावों की कुल संख्या ४९

ही सिद्ध की है, एवं अन्यान्य मनोविकार-रूप भावों को इन्हीं के अंतर्गत बतलाया है। 'अपि सूक्ष्मतया भेदाः कविभिर्न प्रदर्शिताः' के नियमानुसार सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों में विभाजित कर साहित्य-शास्त्र को जटिल बनाना उन्हें अभीष्ट न था, और फिर शास्त्र के नियमानुसार तो 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' अर्थात् प्रधानता के कारण ही नाम निर्देश होता है। भगवान् भरत मुनि के मत से ८ स्थायी + ८ सात्त्विक + ३३ संचारी = ४९ भाव होते हैं। मैं लिख आया हूँ कि स्थायी भाव की ज़मीन पर ही रस की इमारत खड़ी होती है, एवं वही विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से पुष्ट हो रस बन जाता है। इससे जितने स्थायी भाव होंगे, उतने ही रस होंगे। नाट्य-शास्त्र में शांत रस न मानने के कारण भगवान् भरत मुनि ने ८ स्थायी भाव माने हैं। परंतु वाग्देवतावतार श्रीमम्मटाचार्यजी ने बहुत सोच-समझकर काव्य में शांत-नामक नवम रस और निर्वेद-नामक स्थायी भाव माना है। लिखा है—

"निर्वेदः स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमोरसः।" (काव्यप्रकाश)

इनके निर्वेद स्थायी भाव एवं शांत रस मानने से भी भगवान् भरत मुनि के मत का खंडन नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें भी सब मिलाकर ४९ भाव ही रहते हैं।

इस प्रकार रसों की संख्या ९ है—(१) शृंगार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) भयानक, (६) वीर, (७) बीभत्स, (८) अद्भुत और (९) शांत।

इनके स्थायी भाव क्रम से (१) रति, (२) हास, (३) शोक, (४) क्रोध, (५) भय, (६) उत्साह, (७) जुगुप्सा (ग्लानि), (८) विस्मय और (९) निर्वेद हैं।

आठ सात्त्विक भावों में (१) स्तंभ, (२) स्वेद, (३) रोमांच, (४) स्वरभंग, (५) कंप, (६) अश्रु, (७) वैवर्ण्य और (८) प्रलय है।

तेंतीस संचारी भावों में (१) निर्वेद, (२) ग्लानि, (३) शंका, (४) असूया, (५) श्रम, (६) मद, (७) धृति, (८) आलस्य, (९) विषाद, (१०) मति, (११) चिंता, (१२) मोह, (१३) स्वप्न, (१४) विबोध, (१५) स्मृति, (१६) अमर्ष, (१७) गर्व, (१८) उत्सुकता, (१९) अवहित्थ, (२०) दीनता, (२१) हर्ष, (२२) व्रीड़ा, (२३) उग्रता, (२४) निद्रा, (२५) व्याधि, (२६) मरण, (२७) अपस्मार, (२८) आवेग, (२९) त्रास, (३०) उन्माद, (३१) जड़ता, (३२) चपलता और (३३) वितर्क हैं।

रसराज शृंगार

संपूर्ण रसों में शृंगार रसराज है। यही मानव-जगत् का आदि रस है, और इसी के द्वारा मनुष्य-जाति ने जीवन प्राप्त किया है, अपनी परंपरा रक्खी है, और उदार-हृदय होकर इसी के विशुद्ध प्रेम से संसार के भक्तों और दार्शनिकों ने परमात्मा के प्रति जीवात्मा के प्रेम का परिचय प्राप्त किया है। इसी से संपूर्ण विश्व के प्रसिद्ध महाकवियों की रचनाओं में शृंगार-रस के सुंदर वर्णन प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि कविता कला है, और भाव-धारा-प्रधान साहित्य के अंतर्गत है। प्रत्येक कला का उद्देश्य

सौंदर्य के आदर्श को प्रत्यक्षीभूत करना होता है। इस दृष्टि से काव्य में सौंदर्य का वर्णन रहता है। शृंगार ही एक ऐसा रस है, जिसमें बाह्य और अंतरंग प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट सौंदर्य का वर्णन रहता है। इसी से भगवान् भरत मुनि ने आदेश किया है—

"यत्किञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तत्सर्वं शृंगारेणोपमीयते।"

इसके सिवा भाव-धारा-प्रधान साहित्य में प्रेम के समान अन्य कोई भी ऐसा श्रेष्ठ स्थायी भाव नहीं है, जिसमें संपूर्ण स्वार्थ-निलय और द्वैतभावशून्यता का चमत्कार हो। अनुभावों के अंतर्गत भी हावों का वर्णन केवल शृंगार में ही होता है, और सात्त्विक भावों का भी जैसा उत्कर्ष शृंगार में होता है, वैसा अन्य रसों में सर्वथा दुर्लभ है। फिर शृंगार-रस में आश्रय और आलंबन का भी वास्तविक भेद नहीं रहता। इसमें, केवल इसी में, स्थायी भाव आलंबन की अनुभूति का विषय होता है। अन्य रसों में आश्रय और आलंबन, दोनो स्थायी भाव की अनुभूति करते हुए स्वप्न में भी नहीं देखे जाते। दोनो में एकप्राणता का यह भाव सर्वथा दुर्लभ ही है। उद्दीपन भाव की दृष्टि से भी शृंगार सर्वश्रेष्ठ है। अन्य रसों के उद्दीपन केवल मानुषी हैं, पर शृंगार-रस के उद्दीपन मानुषी और दैवी, दोनो होते हैं। संचारी भावों की दृष्टि से भी शृंगार सर्वश्रेष्ठ रस है, क्योंकि शृंगार के स्थायी भाव रति के साथ प्रायः संपूर्ण संचारियों का वर्णन होता है। यही क्यों, शृंगार का अंग बनाकर दूसरे रसों का वर्णन भी किया जाता है। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि इस रस की समता का कोई रस नहीं है, एवं यही आदि रस और रस-राज है। शृंगार-रस की इसी व्यापकता के कारण साहित्याचार्यों को रस-निरूपण करने में, साहित्य-ग्रंथों में रस-योजना को पूर्णतया स्पष्ट रीति से समझाने में शृंगार का ही आश्रय लेना पड़ा है। रस-विषयक प्रत्येक ग्रंथ में शृंगार-रस का सविस्तर और पूर्ण वर्णन मिलता एवं अन्यान्य रसों का वर्णन अत्यंत संक्षेप में प्राप्त होता है। रस-पूर्ण मुक्तक-लेखक कवीश्वरों ने तो शृंगार को सदैव महत्त्व दिया है। इसका कारण यह भी है कि रस की आद्यंत संपूर्ण योजना की अभिव्यक्ति शृंगार-रस के अतिरिक्त और किसी रस में नहीं होती। इस रस के आलंबन नायिका और नायक के भेद-प्रभेदों से रीति-ग्रंथ भरे पड़े हैं। तात्पर्य यह कि रसराज शृंगार के भेद-प्रभेदों आदि का जैसा विस्तृत वर्णन रीति-ग्रंथों में प्राप्त होता है, उसका शतांश भी अन्य किसी रस का नहीं। प्रस्तुत ग्रंथ में भी शृंगार-वर्णन का बाहुल्य है।

काव्यार्थ

रस शब्दों द्वारा प्रकट होता है, अतएव यहाँ शब्द और उसके अर्थ पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। व्यापक अर्थ में जो कान से सुनाई दे, उसे शब्द कहते हैं। शब्द के सुनने से उससे जो कुछ समझा जाता है, उसे शब्द का अर्थ कहते हैं। तात्पर्य यह कि प्रत्येक शब्द अर्थ-बोधक होता है। शब्द दो प्रकार के हैं—पहले में केवल सांकेतिक शब्द हैं, जैसे—'अँसुआ परि छतियाँ छिनकु छनछनाय छिपि जायँ।' इस उदाहरण में 'छनछनाय' एक सांकेतिक, अर्थबोधक शब्द है। इसके स्थान में दूसरे किसी शब्द का

प्रयोग नहीं हो सकता। ऐसे शब्दों के पर्यायवाची शब्द भाषा में प्रायः होते ही नहीं। दूसरे प्रकार के शब्द ध्वनि-अनुकरण के संकेत को बतलानेवाले नहीं होते। इनके स्थान में अन्यान्य पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—'छिपि जायँ' को हम 'दुरि जायँ', 'लुप्त हो जायँ', 'अंतर्द्धान हो जायँ', 'अप्रकट हो जायँ' आदि के प्रयोग द्वारा सहज ही प्रकट कर सकते हैं। पर 'छनछनाय' का सदा-सर्वदा एक ही निश्चित नियत अर्थ रहेगा।

अर्थ-भेद में वाच्यार्थ

शब्द तीन प्रकार के होते हैं—(१) वाचक, (२) लक्षक और (३) व्यंजक। इनकी उन शक्तियों को, जिनसे ये जाने जाते हैं, क्रम से (१) अभिधा, (२) लक्षणा और (३) व्यंजना कहते हैं। इनके अर्थ भी तीन प्रकार के होते हैं—(१) वाच्यार्थ, (२) लक्ष्यार्थ और (३) व्यंग्यार्थ। जो शब्द परंपरा-मूलक सांकेतिक अर्थ को प्रकट करे, उसे वाचक और उसके अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं। साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथजी का मत है—

तत्र सांकेतिकार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा। (सा० अ० ६, पृ० २८)

अर्थात् "वहाँ सांकेतिक अर्थ के बोध के कारण प्रथम अर्थात् अभिधा है।"

इनके इस मत से वाचक शब्द सांकेतिक अर्थ प्रकट करता है। संकेत और अभिधा पर्यायवाची शब्द हैं। न्याय-शास्त्र में शक्ति के विषय में कहा है—

अस्मात्पदादयमर्थो बोधव्य इतीश्वरसंकेतः शक्तिः।

अर्थात् "इस पद से यह अर्थ जानना चाहिए, ऐसा जो ईश्वर का किया हुआ संकेत है, वह शक्ति है।"

वाच्यार्थ के मुख्यार्थ, नामार्थ और अभिधेयार्थ आदि पर्यायवाची शब्द हैं। अभिधा के इस संकेत का ग्रहण चार प्रकार से होता है—(१) जाति के नाम से, (२) स्वतंत्र नाम से, (३) धर्मी के गुण अर्थात् रंग, रूप, रस तथा गंध आदि के नाम से और (४) क्रिया के नाम से। इनके उदाहरण में आचार्य भिखारीदासजी ने एक दोहा लिखा है—

जाति-नाम यदुनाथ गुनि, कान्ह यदृच्छा धारि,
गुन तें कहिए स्याम अरु क्रिया-नाम कंसारि। (काव्यनिर्णय पृष्ठ ४)

यादव-जाति में होने के कारण श्रीकृष्ण का नाम यदुनाथ है, कान्ह स्वतंत्र नाम है, श्याम गुण-नाम है, क्योंकि श्रीकृष्ण श्यामवर्ण के हैं, और कंसारि क्रिया-नाम है, क्योंकि श्रीकृष्ण ने कंस से शत्रुता करके उसका वध किया था।

लक्ष्यार्थ

लक्षणा-शक्ति शब्द के मुख्यार्थ से भिन्न, परंतु उसके निकटवर्ती अन्य अर्थ को प्रकट करती है। लक्षणा के दो भेद हैं—(१) रूढ़ि और (२) प्रयोजनवती। जिसमें मुख्यार्थ

का बाध हो, पर जिसकी लोक में प्रसिद्धि हो, उसे रूढ़ि लक्षणा कहते हैं। 'फलीं सकल मन-कामना', इसमें मन-कामना फल देनेवाले लता-वृक्षों में से नहीं, जो फलें। पर यह कथन लोक में अत्यंत प्रसिद्ध है, और इससे 'मन-कामना पूर्ण हुई' यह अर्थ लिया जाता है, जो रूढ़ि से माना गया है। जब मुख्यार्थ से वक्ता का अभिप्राय न निकलता हो, तब उस अभिप्राय को समझने के लिये रूढ़ि के कारण अथवा किसी ख़ास प्रयोजन से कोई दूसरा ऐसा अर्थ लिया जाय, जिसका मुख्य अर्थ से संबंध हो, तब उसे प्रयोजनवती लक्षणा कहते हैं। जैसे—'चोर दरवाज़ा तोड़कर भीतर गया।' इसमें किवाड़ों का तोड़ा जाना संभव है, सो किवाड़ तोड़ना न कहकर दरवाज़ा तोड़ना कहा। पर यहाँ दरवाज़ा तोड़ने से किवाड़ तोड़ने का प्रयोजन निकलता है, जिससे भीतर जाने का अर्थ लिया जाता है; इससे यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है। इसके दो भेद हैं—(१) शुद्धा और (२) गौणी। शुद्धा लक्षणा के भी चार भेद हैं—(१) उपादान लक्षणा, (२) लक्षण लक्षणा, (३) सारोपा लक्षणा और (४) साध्यवसाना लक्षणा। गौणी लक्षणा के भी दो भेद हैं—(१) गौणी सारोपा और (२) गौणी साध्यवसाना। अनेक आचार्यों ने (१) गूढ़व्यंग्या और (२) अगूढ़-व्यंग्या-नामक दो प्रकार की लक्षणा और मानी हैं।

व्यंग्यार्थ

वाच्यार्थ वा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी अन्य प्रतीयमान अर्थ का बोधक शब्द व्यंजक है। इस व्यंजक-शब्द से इष्टार्थ का बोध करानेवाली शक्ति को व्यंजना-शक्ति कहते हैं। जैसे 'मुक्ताओं से चौक पुराए।' इससे मुख्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ का बाध होने पर श्रीसंपन्नता और ऐश्वर्य व्यंजित होते हैं। व्यंजना से जाने हुए अर्थ को व्यंग्यार्थ, ध्वन्यार्थ, आक्षेपार्थ और प्रतीय-मानार्थ कहते हैं। न्याय-शास्त्र में अभिधा और लक्षणा दो ही वृत्ति मानते हैं। व्यंजना-वृत्ति तो साहित्य या काव्य-शास्त्र ही में मानी गई है। इसी से व्यंग्यार्थ को वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से पृथक् दिखलाते हुए ध्वनिकार लिखते हैं—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।

व्यंग्य दो प्रकार का है—(१) प्रधान और (२) अप्रधान। जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार हो, वहाँ प्रधान व्यंग्य होता है, और जहाँ व्यंग्यार्थ में वाच्यार्थ से अधिक चमत्कार न होकर उससे सम या न्यून चमत्कार हो, वहाँ अप्रधान व्यंग्य होता है। अप्रधान व्यंग्य को गुणीभूत व्यंग्य भी कहते हैं। प्रधान व्यंग्य के भी (१) शाब्दी और (२) आर्थी-नामक दो भेद हैं, जिनके अन्य अनेक उपभेद हैं। अप्रधान या गुणीभूत व्यंग्य के भी अनेक भेदोपभेद हैं। इनका उत्तम, सविस्तर वर्णन सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार के 'काव्य-कल्पद्रुम' में हिंदी-प्रेमियों को प्राप्त होगा।

व्यंग्यार्थ और ध्वनि

स्मरण रहे, व्यंग्य ध्वनित होता है। इसी से जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है, वहाँ

ध्वनि रहती है। व्यंग्यार्थ की प्रतीति करानेवाली वृत्ति को भगवान् वेदव्यासजी आक्षेप-रूप अथवा ध्वनि-रूप मानते हैं। लिखते हैं—

श्रुतेरलभ्यमानोऽर्थो यस्माद्भाति सचेतनः ;
स आक्षेपो ध्वनिः स्याच्च ध्वनिना व्यज्यते यतः।

(अग्निपुराण)

अर्थात् "श्रवण-मात्र से अलभ्यमान अर्थात् अभिधा और लक्षणा से नहीं जाना हुआ अर्थ जिससे सचेतन अर्थात् प्रकाशमान होकर भाति अर्थात् भासता है, वह आक्षेप है, और ध्वनि द्वारा प्रकाशित होता है, इससे वह 'ध्वनि' भी है।"

श्रीमम्मटाचार्यजी प्रतीयमान अर्थ की वृत्ति को ही ध्वनि मानते हैं। लिखा है—

इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।

(काव्यप्रकाश)

अर्थात् "जिसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ अतिशयवाला हो, वह उत्तम काव्य है; इसी को बुद्धिमान् ध्वनि कहते हैं।"

इसी ध्वनि के वर्णन में साहित्य-शास्त्र में बहुत अधिक लिखा गया है, और संस्कृत के ध्वन्यालोक-जैसे ग्रंथ तो केवल इसी विषय पर लिखे गए हैं। उपर्युक्त व्यंग्यार्थ, लक्ष्यार्थ और वाच्यार्थ में उत्तरोत्तर अपकर्ष माना जाता है। व्यंग्य-प्रधान काव्य में ध्वनि प्रधान होती है, और यही उत्तम काव्य माना जाता है।

काव्य-भाषा

किसी भी काव्य की उत्तमता की जाँच करने के लिये केवल यही जानना आवश्यक नहीं कि उसमें रस है या नहीं, वरन् यह भी आवश्यक है कि हम उसकी भाषा को भी परखें। यह कभी न समझना चाहिए कि व्यापारिक भाषा के समान काव्य की भाषा केवल भाव प्रकट करने का साधन है, क्योंकि काव्य की भाषा का उद्देश्य यथार्थ में भाव को मूर्तिमान् करने का है। काव्य की भाषा भावानुगामिनी होनी चाहिए। यदि भाव कविता का जीव है, तो भाषा कविता का शरीर है। भाव की चपलता अथवा गंभीरता आदि के अनुसार ही भाषा की चपलता अथवा गंभीरता आदि का होना आवश्यक है, जिस कविता में भावानुरूपिणी भाषा न हो, वह श्रेष्ठ कविता नहीं कहला सकती। अँगरेज़ी-भाषा के महाकवि पोप ने अपने Essay on criticism में लिखा है—

"It is not enough, no harshness gives offence,
The sound must seem an echo to the sense."

अर्थात् "काव्य की भाषा के लिये केवल यही पर्याप्त नहीं है कि उसमें कर्ण-कटुत्व दोष न हो, वरन् यह भी आवश्यक है कि शब्द ऐसे हों, जिनके उच्चारण-मात्र से अर्थ प्रतिध्वनित हो उठे।"

भाव के अनुरूप भाषा में एक निराला प्रवाह होता है, जिसे हम भाषा का स्वाभाविक

प्रवाह कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त भाषा का व्याकरण-विशुद्ध और समुचित नियंत्रित होना भी परमावश्यक है।

गुण

आर्य-साहित्य के प्राचीन आचार्यों ने काव्य की भाषा में गुण की व्यवस्था दी है। जिस प्रकार मनुष्य में सौंदर्य, सत्यता एवं शूरता आदि गुण हैं, उसी प्रकार काव्य की भाषा में भी माधुर्य, ओज और प्रसाद-गुण हैं। मुख्य गुण ये तीन ही माने गए हैं। मन को द्रवीभूत करनेवाले आह्लाद को माधुर्य कहते हैं। यह संभोग-शृंगार, करुण-रस और विप्रलंभ-शृंगार एवं शांत-रस में क्रम से अधिकाधिक रहता है। जिस रचना में टवर्ग का अभाव हो, लंबे-लंबे समास न हों, लघु और सानुस्वार वर्णों का बाहुल्य हो, एवं कोमलकांत पदावली हो, वह माधुर्य-गुण-युक्त होती है। ऐसी रचना में संयुक्त या मिलित वर्णों का प्रयोग न होना चाहिए। इसमें सानुनासिक वर्णों का आना शोभाकर है। ओज दीप्ति को कहते हैं। यह मन को तेज-युक्त करने में कारण है। इस गुण की वीर-रस में स्थिति है। बीभत्स और रौद्र-रस में क्रम से इसका आधिक्य है। यह वर्ग के प्रथम अथवा द्वितीय वर्णों, टवर्ग, श, ष अथवा रेफ, संयुक्त और मिलित वर्णों और लंबे-लंबे समासों से युक्त रचना में होता है। इसमें जिस घटना का वर्णन होता है, वह औद्धत्य-युक्त होती है। मेरे विचार से घकार का अधिकता से प्रयोग भी ओज गुण में होता है। काव्य के भाव में बुद्धि को शीघ्र प्रविशित कराने की निर्मलता प्रसाद-गुण में रहती है। क्लिष्टत्व-दोष की मलिनता से यह रहित है। यह समस्त रसों और रचनाओं में चित्त को सूखे ईंधन में अग्नि के समान शीघ्र व्याप्त करने में समर्थ रहता है। समर्थ महाकवियों की वाणी में यह गुण सर्वत्र रहता है। इस प्रकार माधुर्य-गुण शृंगार, करुण और शांत में, ओज-गुण वीर, बीभत्स और रौद्र में एवं प्रसाद-गुण संपूर्ण नवरसों में अपेक्षित है। हास्य, भयानक और अद्भुत रसों में किसी विशेष गुण का नियम नहीं। इनमें कभी माधुर्य और कभी ओज रहता है। यहाँ रसों में गुणों का इस प्रकार कथन करने से यह न समझना चाहिए कि रस-हीन काव्य में ये गुण नहीं होते, वरन् यह समझना चाहिए कि शृंगार, करुण तथा हास्य-रसों में ओज-गुण नहीं आना चाहिए, और वीर, बीभत्स एवं रौद्र-रसों में माधुर्य नहीं आना चाहिए। यदि यह बात नहीं मानी जायगी, तो काव्य असुंदर और प्रभाव-हीन हो जायगा। पुत्र-जन्मोत्सव में रणभेरी और मारू बाजे नहीं सुहाते, युद्ध के समय सितार की गत नहीं भाती। शृंगार आदि में माधुर्य और वीर आदि में ओज ही सुहावना लगता है।

कई आचार्यों ने अनेक गुण माने हैं, पर उपर्युक्त तीन गुणों की प्रधानता सभी ने स्वीकार की है। संस्कृत में वामनाचार्य और हिंदी में भिखारीदास आदि ने दस गुण माने हैं। वे ये हैं—

(१) माधुर्य, (२) ओज, (३) प्रसाद, (४) श्लेष, (५) समता, (६) सुकुमारता, (७) समाधि, (८) कांति, (९) उदारता और (१०) अर्थव्यक्ति।

भाषा के प्रसिद्ध आचार्य श्रीपति १० शब्द-गुण और ८ अर्थ-गुण, इस प्रकार कुल १८ गुण मानते हैं। वे ये हैं—

१० शब्द-गुण—(१) उदारता, (२) प्रसाद, (३) उदात्त, (४) समता, (५) शांति, (६) समाधि, (७) उक्तिप्रमोद, (८) माधुर्य, (९) सुकुमारता और (१०) संक्षिप्त।

८ अर्थ-गुण—(१) भव्यकल्प, (२) पर्यायोक्ति, (३) सुधर्मिता, (४) सुशब्दता, (५) अर्थव्यक्त, (६) श्लेष, (७) प्रसन्नता और (८) ओज।

धाराधीश महाराजा भोज ने स्वरस्वती-कंठाभरण में २४ गुण माने हैं। इनमें से दस तो वे ही हैं, जो वामनाचार्य आदि मानते हैं, और शेष १४ के नाम ये हैं—

(११) उदात्तता, (१२) और्जित्य, (१३) प्रेय, (१४) सुशब्दता, (१५) सूक्ष्मता, (१६) गांभीर्य, (१७) विस्तार (व्यास), (१८) संक्षेप, (१९) सम्मति, (२०) भाविक, (२१) गति, (२२) रीति, (२३) उक्ति और (२४) प्रौढ़ोक्ति।

वैसे तो सभी गुण आवश्यक हैं, क्योंकि इनसे शब्द और अर्थ का सौंदर्य बढ़ता ही है, पर मेरे विचार से इतने गुण मानना केवल सूक्ष्मातिसूक्ष्म गहन भेद करके विस्तार बढ़ाना है। फिर इनमें से अनेक गुण अर्थालंकारों में आ जाते हैं। यदि काव्य में कवि भाव की उत्तमता के साथ-साथ भाषा में प्रसाद, माधुर्य और ओज का ध्यान रक्खे, और अपनी रचना में इन तीनो गुणों का विचार-पूर्वक समावेश करे, तो श्लेष और यमक को छोड़कर प्रायः अन्यान्य सभी गुण उसकी रचना में आ जायँगे। आचार्य भिखारीदासजी लिखते हैं—

माधुर्योज-प्रसाद के सब गुन हैं आधीन,
तातें इनहीं को गनैं मम्मट सुकवि प्रवीन। (काव्यनिर्णय)

भाषा में इन गुणों के अतिरिक्त अनुप्रास भी होना चाहिए। भिखारीदासजी लिखते हैं—

रस के भूषित करन तें गुन बरनें सुखदानि;
गुन-भूषन अनुमान कै अनुप्रास उर आनि। (काव्यनिर्णय)

इसमें संदेह नहीं कि अनुप्रास गुण को चमका देते हैं, जिससे गुण रस के उत्कर्ष का हेतु बन जाता है। अनुप्रास ध्वनि-विशेष को लगातार स्थिर रखकर रस को सुस्वादु और प्रभावशाली बना देता है। इसी से अनुप्रास का होना आवश्यक है, पर यह ध्यान रहे कि अनुप्रास सर्वदा रस के अनुकूल हों, एवं भाषा भावानुगामिनी तथा स्वाभाविक प्रवाह-युक्त बनी रहे। अनुप्रास लाने के लिये शब्दों की कपाल-क्रिया करना, व्याकरण-हीन एव असमर्थ भाषा लिखना या भाषा की स्वाभाविकता नष्ट करना अर्थात् उसे स्वाभाविक प्रवाहमयी न रहने देना कदापि प्रशंसनीय नहीं। अनुप्रास वही प्रशंसनीय एवं वांछनीय है, जो काव्य की भाव-राशि में बाधा न डाले।

इसके अतिरिक्त श्लेष भी भाषा-सौंदर्य का कारण है, पर उसके कारण रचना में क्लिष्टत्व-दोष न आना चाहिए। श्लेष केवल ऐसे शब्दों का होना चाहिए, जिनके एक से अधिक

अर्थ प्रचलित भाषा में हों, और लोग जिन्हें सहज ही समझ सकते हों। तात्पर्य यह कि श्लेष के शब्दों में एक से अधिक अर्थ स्पष्टतया भासित होना चाहिए, जिससे माथापच्ची करके अर्थ न निकालना पड़े। श्लेष रस-प्रवाह में बाधक न होकर रसोत्कर्ष का हेतु होना चाहिए, तभी वह प्रशंसनीय है।

इसके बाद यमक की भाषा में आवश्यकता जान पड़ती है, क्योंकि इससे भी काव्य की श्री-वृद्धि होती है। परंतु यमक ऐसे न हों, जो भाषा को जटिल बनाकर रस-प्रवाह में बाधक हों। इससे काव्य में कभी-कभी निराली छटा आ जाती है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त यह भी ध्यान रहे कि काव्य की भाषा देश, काल एवं पात्र के सर्वथा अनुकूल हो। यदि ऐसा न हुआ, तो काव्य की भाषा में अपेक्षित सजीवता न रह सकेगी। यदि भाषा सजीव न हो, उसमें वक्ता के मनोविकारों की ध्वनि न हो, उसमें वक्ता के हृदय के आह्लाद, क्रोध, करुणा, शोक, चिंता या व्यग्रता आदि की प्रतिध्वनि न हो, तो फिर उस निर्जीव भाषा में माधुर्य, यमक एवं अनुप्रासादि मृत नारी के अंग के आभूषणों के समान निरर्थक ही हैं। इसके सिवा शब्दों के प्रयोग पर भी पूर्ण ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि प्रत्येक शब्द के स्वरूप या अर्थ में कुछ विशेषता होती है। शब्द का यथास्थान, वज़न तौलकर औचित्य-पूर्ण प्रयोग करना ही कवि की कुशलता बतलाता है। यथार्थ में चुने हुए उत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम से यथास्थान प्रयोग करना ही काव्य की भाषा का प्रधान उद्देश्य होना चाहिए।

काव्य और छंद

भाषा के बाद काव्य में छंद की भी आवश्यकता है। आर्य-जगत् में छंद-शास्त्र का बड़ा मूल्य रहा है, और है। यहाँ तक कि धर्म-ग्रंथों से लगाकर दर्शन-शास्त्र, न्याय, ज्योतिष्, वैद्यक एवं कोष आदि सभी विषयों के ग्रंथ छंदोबद्ध हैं। छंद-शास्त्र का आर्य-जगत् में वैदिक काल से ही प्रारंभ हो गया था, और इसी से "छंदः पादौ तु वेदस्य" की घोषणा का निनाद आज भी गूँज रहा है। छंद-शास्त्र (या पिंगल) और संगीत से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। सच पूछो, तो छंदों पर ही गायन अवलंबित है। इसमें भी छंद का काम बिना गायन के चल सकता है, पर गायन का काम छंद के बिना सुचारु रूप से चल ही नहीं सकता। छंद के बिना गायन 'सरगम' के सिवा और क्या रह सकेगा? जब मनुष्य का हृदय प्रफुल्लित रहता है, तब उससे आनंद-सूचक ध्वनि निकलती है, जो लय-रूप में होती है। जब उसे संकोच नहीं होता, खेद नहीं होता, शोक नहीं होता, क्रोध नहीं होता और वह छल-कपट से रहित शुद्ध सात्विक होता है, तब उसके आनंद-पूरित हृदय से एक ध्वनि (लय) निकलती है। यही संगीत की मनोहर ध्वनि की आदि कारण है, और इसी को शुद्ध संगीत अपने कलात्मक संस्कृत रूप में प्रकट करता है। यहाँ यह स्मरण रहे कि ऐसे हर्ष के समय मनुष्य के मन में यह उत्कट अभिलाषा होती है कि वह उस आनंद के समाचार या अपने हर्ष को हास्यादि

द्वारा अपने निकटतम प्रेमी अथवा इष्ट-मित्र पर प्रकट करे। आत्मप्रकाश की स्वाभाविक मानवीय प्रेरणा से प्रेरित होकर वह करता भी यही है। इसके लिये भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा के विना मनोभाव प्रकट करना दुस्तर है, अतएव वह भाषा की शरण लेता है। इसी कारण भाषा और ध्वनि का संयोग होता है, और छंद-रचना हो जाती है। जिस प्रकार एक मद से उन्मत्त पुरुष कुछ विलंब तक एक-सा बोलता जाता है, उसी प्रकार उस आनंद-विह्वलता में उक्त आह्लादित व्यक्ति भी कुछ देर तक एक ही ध्वनि में कहता जाता है। फल यह होता है कि उसका वर्णन एक छंद के साँचे में ढल जाता है। यही छंद की उत्पत्ति का आदि है। भावावेश के समय प्रतिभाशाली कवि की उक्ति छंद में स्वाभाविक रूप से रहती है। यही कारण है कि सभी बड़े-बड़े कवियों की रचना छंदोबद्ध पाई जाती है।

डार्विन आदि विकासवादियों के मतानुसार मनुष्य की सर्व-प्रथम भाषा संगीत-स्वरपूर्ण थी। आर्य-साहित्य में भगवान् शंकर के डमरू के संगीत-स्वर से भाषा की उत्पत्ति का वर्णन पाया जाता है। यथार्थ में उत्कृष्ट भावमयी कविता पद्यात्मक ही होती है। इसी से साहित्याचार्यों के कविता के गद्य और पद्य, दो भेद बतलाने पर भी जन-समुदाय में गद्य को कविता मानने में संकोच पाया जाता है। साधारणतया लोग पद्य को ही काव्य मानते हैं। अँगरेज़ी-भाषा के सर्वोत्कृष्ट प्रतिभाशाली माननीय महाकवि मिल्टन लिखते हैं—

"A poet soaring in the high realm of his fancies, with his garland and singing robes about him."

अर्थात् "कवि संगीत ही के वस्त्र पहने और माला धारण किए हुए कल्पना के विशाल क्षेत्र में उड़ता रहता है।"

इसमें मिल्टन ने पद्यात्मक कविता ही कविता मानी है। सुप्रसिद्ध विद्वान् साहित्यिक महामना वेब्स्टर साहब की राय है—

"Poetry is the embodiment in appropriate language of beautiful or high thought, imagination or emotion, the language being rhythmical, usually metrical and characterised by harmonic and emotional qualities which appeal to and arouse the feeling and imagination."

इनका तात्पर्य यह है कि उपयुक्त भाषा में सुंदर और उच्च विचारों का समावेश ही कविता है। उसमें कल्पना और भावावेश भी रहना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि उसकी भाषा ध्वनि-पूर्ण पद्यात्मक हो, और उसकी यह विशेषता भी होनी चाहिए कि उस भाषा के पढ़ने से पाठकों के हृदय में उसी के अनुकूल भावों का उद्रेक हो।

तात्पर्य यह कि बहुमत से और साधारण जन-समुदाय की दृष्टि से कविता पद्यात्मक

होनी चाहिए। यह है भी उचित ही। क्योंकि संगीत की लय होने से कविता का जो आनंद पद्यात्मक काव्य में रहता है, वह गद्यात्मक में होता भी तो नहीं है। परंतु हम देखते हैं कि मनुष्य के व्यापार का क्षेत्र दिन-दिन जटिल होता जा रहा है। जैसा सरल सृष्टि के आदि काल में था, वैसा आजकल कहाँ है? जैसा सरल सौ वर्ष पूर्व था, उससे आज पचास-गुना जटिल हो गया है, और दिन-दिन जटिल होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में मनुष्य का मन स्वार्थपरायणता से संकुचित होता जाता है। इसके कारण वह अपने स्वच्छंद आह्लाद को बहुत कुछ भूलता जाता है। उसका जीवन कुछ-कुछ नीरस-सा होता जाता है। अतएव उसके हृदय में वैसी उमंग नहीं उठती, और इससे आनंद के समय भी उसके मुख से संगीत-ध्वनि नहीं निकलती। पर कविता तो मनोवेगों या भावों पर निर्भर है, और जब तक मनुष्य है, और मनुष्य के मन है, तब तक मनोभाव कहाँ जा सकते हैं? मनोभाव के साथ कविता भी नहीं जा सकती। पूर्ण भावावेश न सही, कुछ न्यून ही सही; पर होता तो है ही। इसी से गद्य-काव्य का जन्म हुआ है। यद्यपि जनसाधारण गद्य-काव्य को काव्य नहीं समझते, पर उसमें यदि रस का निर्वाह है, भाव-पूर्ण भाषा, अलंकार एवं ध्वनि है, तो वह कविता अवश्य है। हाँ, यह अवश्य है कि गद्य-काव्य का स्थान पद्य-काव्य से सदा ही नीचा रहेगा। गद्य में यद्यपि काव्यमयी भाषा के सब गुण आ जाते हैं, पर पद्य की लय से उद्भूत मधुर संगीत कहाँ आ सकता है?

हिंदी का छंदशास्त्र

हिंदी-भाषा का छंदशास्त्र अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त है। हिंदी-भाषा के छंदशास्त्र में सहस्रों छंद हैं। पिंगल का विस्तार भी प्रस्तार-भेद के कारण हिंदी में विराट् है। यहाँ तक कि हिंदी के छंदशास्त्र के आचार्यों के मत से—

> दुइकल ते बत्तीस लग छंद बान्नबे लाख—
> सहस सताइस चार सें बासठ पिंगल भाख।

इस विस्तार का समझना अत्यंत कठिन है, एवं यहाँ स्थानाभाव भी है। फिर भी यहाँ इतना लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि हिंदी के कवियों को छंदों के लिये उनके पूर्ववर्ती विद्वान् साहित्यिकों ने इतना दे दिया है कि उन्हें किसी का द्वार खटखटाने और किसी भाषा के आगे हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं रह गई है। इन छंदों में सैकड़ों छंद अत्यंत मनोरम और हृदयहारी हैं।

यह बात मैं हिंदू, हिंदी-प्रेमी अथवा हिंदुस्थानी होने के कारण या राष्ट्रभाषा हिंदी की सम्मान-वृद्धि के उद्देश से नहीं कह रहा हूँ, और न अन्य भाषा-भाषियों के समान पक्षपात से अंधे होकर। ऊट-पटाँग छंदों के विधाता अँगरेज़ भी, जो अपनी भाषा के प्रबल पक्षपाती हैं, हिंदी के मनोहर छंदों पर रीझकर, स्वभाषा की ममता त्यागकर हज़ार मुख से इस विषय में हिंदी की प्रशंसा करते हैं। डॉक्टर फ्रैंक ई० की० एम्० ए०, डी० लिट० अपनी पुस्तक 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (A History of Hindi Literature) में लिखते हैं—

"There is probably no language in which prosody has been more elaborately developed than in Hindi. Its system is derived ultimately from the principles which govern the Sanskrit poetry. It does not like English depend on accent, but like the classic poetry of Greece and Rome is based on the quantity of the syllables, long or short. But rhyme is also used almost universally and in Hindi poetry a rhyme means not only the last syllable of a line, but the last two syllables at least correspond with those of another line. A good deal of liberty is allowed in respect of orthography and even of grammatical construction, but the rules for the various metres are very complicated. The result however in the hands of a skillfull poet is the production of poetry, the form and rythm of which has a wonderful charm probably not surpassed in any language Many metres are specially used in the composition of verses which are intended to be sung. In these the same rhyme is often continued throughout all the lines of the poem."

(Chap. I, Page 6)

इसका भावार्थ यह है—

"संसार की प्रायः किसी भी भाषा में छंद-शास्त्र की ऐसी परिश्रम-पूर्ण उन्नति नहीं हुई, जैसी हिंदी में। इसका आधार संस्कृत का पिंगल-शास्त्र है, उसी के नियमों पर हिंदी का छद-शास्त्र अवलंबित है। वह अँगरेज़ी-भाषा के समान उच्चारण के अनुसार चिह्नों या विरामों अथवा लहज़े के नियमों पर अवलंबित न रहकर ग्रीक और रोमन की सर्वोत्कृष्ट विद्वत्ता-पूर्ण कविता या उस्तादाना कलाम (Classic-pertaining to authors of high rank) के ढंग पर है, जिसमें वर्णों का उच्चारण एक ही मात्रा (utterance) या 'गिरह' में हो सकता है, फिर चाहे वे ह्रस्व हों, चाहे दीर्घ। परंतु तुकांत का भी प्रायः सर्वत्र प्रयोग किया जाता है। हिंदी-कविता में तुकांत का अर्थ किसी पद्यात्मक प्रबंध के चरण या पंक्ति के अंत्य वर्ण का मिलान ही नहीं है, हिंदी-तुकांत में कम-से-कम एक चरण या पंक्ति के अंतिम दो अक्षरों का मिलान दूसरे चरण या दूसरी पंक्ति के अंतिम दो अक्षरों से ऐसा होना चाहिए, जिसमें उनका वज़न बराबर रहे। इसके लिये कवियों को भाषा के शब्दों के शुद्ध रूप को आसानी से समझे जानेवाले अशुद्ध रूप में लिखने की बहुत स्वतंत्रता दे दी गई है। साथ-साथ व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करने की भी आज्ञा दे दी गई है। (पर यहाँ यह ध्यान रहे कि ऐसी स्वतंत्रता बड़ी आवश्यकता पड़ने पर ही

उपयोग में लाई जा सकती है, सर्वत्र नहीं। क्योंकि यह तो निर्वाह की बात है, कुछ स्तुत्य थोड़े ही है।) भिन्न-भिन्न छंदों के निर्माण करने के नियम बहुत कुछ उलझन में डालनेवाले हैं। फिर भी परिणाम यह हुआ कि बुद्धिमान्, चतुर कवियों के हाथों से ऐसे काव्य की रचना हुई, जिसके पद्यात्मक रूप और ध्वनि में कुछ ऐसी विचित्र मोहिनी है, जिसके सामने संसार की किसी भी भाषा का काव्य नहीं ठहर सकता। हिंदी के पिंगल में छंदों की संख्या बहुत अधिक है। अनेक छंद विशेषकर ऐसी कविताओं की रचना के लिये प्रयुक्त होते हैं, जो गाई जाती हैं। ऐसे छंद संगीतमय होने से मज़े में गाए जाते हैं।"

आप पुनः लिखते हैं—

"The best Hindi writers have produced a great deal of verse which is very graceful and artistic and it must be said that the strict rules as to versification and their great elaboration have helped to make Hindi Poetry almost unrivalled for melody and rhythm."

(Chap. XI, page 101)

इनका तात्पर्य यह है कि हिंदी के सर्वोत्कृष्ट कवियों ने एक बहुत बड़े परिमाण में ऐसा पद्य-काव्य निर्माण किया है, जो बहुत ही महत्त्व-पूर्ण सौंदर्य से युक्त (graceful—beautiful with dignity) और कला-संपन्न है। और, यह तो विवश होकर कहना ही पड़ता है कि छंद-शास्त्र के कड़े नियमों और उसके भारी परिश्रम ने हिंदी-काव्य को तुकांत और ध्वनि या तरंग की मनोहरता में अद्वितीयप्राय बना दिया है।

तुक और अनुप्रास

आजकल तुकांत और अतुकांत कविता पर भी विवाद उठा है। पर यह व्यर्थ है। यदि उनमें रस हो, तो वे चाहे तुकांत छंद हों, चाहे अतुकांत, कविता उनमें अवश्य है। रही यह बात कि उत्तम कौन है? सो यह तो विवश होकर कहना ही पड़ता है कि अतुकांत की अपेक्षा तुकांत में माधुर्य और मनोहरता की अत्यधिक विशेषता रहती है। इसी से अतुकांत से तुकांत पद्य ही श्रेष्ठतर है। इसके विषय में 'माधुरी'-पत्रिका में ७-८ वर्ष पूर्व एक विवेचनात्मक टिप्पणी निकली थी। हम अपने पाठकों के अवलोकनार्थ उसे यहाँ उद्धृत करते हैं—

"हिंदी-साहित्य में, पद्य-रचना में, तुक और अनुप्रास का बहुत आदर रहा है। आजकल कुछ ऐसी भी कविता होने लगी है, जिसमें तुक और अनुप्रास की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। पर अभी ऐसी रचना बहुत थोड़ी है। विश्व-साहित्य पर ध्यान देने से जान पड़ता है कि एशिया के सभी पुराने कवियों ने तुक और अनुप्रास को अपनाया है। वर्तमान काल के कवियों में भी इसका बोलबाला है। योरप के आधुनिक कवि भी सर्व-सम्मति से अनुप्रास और तुक के अनुकूल हैं। यद्यपि उनकी राय में नाटक तथा वीर चरित्र वर्णनात्मक कविताओं (Epic poetry) में तुक और अनुप्रास विशेष रूप से अच्छे

नहीं मालूम होते। तुक और अनुप्रास के संबंध में कवि की कुशलता इसी बात में है कि वह अपनी रचना में इनको लाने का आग्रह करके लिखने न बैठे, वरन् वे सहज ही में अपने आप आते जायँ। बराबर एक ही प्रकार के तुक और अनुप्रास का प्रयोग करते रहना ठीक नहीं। इससे रोचकता घट जाती है। अतएव इसमें आवश्यकता के अनुकूल परिवर्तन करते रहना चाहिए। कहीं पर इनमें नूतनता उत्पन्न करना चाहिए, और कहीं पर इनकी सहायता से ओज और सुकुमारता का पार्थक्य प्रकट करनी चाहिए। इनको बार-बार दुहराकर मानुषी भावों की तीव्रता प्रकट की जा सकती है। आश्चर्य के भाव और व्यंग्य का प्रभाव दिखलाया जा सकता है, और हास-परिहास में इनकी बदौलत हास्य-रस का परिपाक बहुत स्वादिष्ठ हो सकता है। कभी-कभी कवि-विशेष के अनुप्रास-प्रयोग को देखकर उसकी उस आनंदमयी इच्छा-शक्ति का पता चलता है, जिसके कारण वह एक दुर्दमनीय विषय को अपने वश में कर लेता है। महाकवि डाइड्रेन ने इस बात को स्वीकार किया है कि तुक और अनुप्रास की बदौलत मुझे प्रायः बड़े-बड़े भाव सूझे हैं। सुकवि बोलियो की यह आदत थी कि वह अपने पद्य की दूसरी पंक्ति पहले बना लेता था और पहली बाद को। संसार का सबसे बड़ा हास्य-रस का लेखक मौलियर अनुप्रास और तुक के प्रयोग में नितांत कुशल और सिद्धहस्त था। लेखकवर लेहंट ने अपने 'कविता क्या है'-नामक निबंध में तुक और अनुप्रास के संबंध में बहुत-सी बातें लिखी हैं। ऊपर की अनेक बातें हमने इसी निबंध से संकलित की हैं। तुक और अनुप्रास कवित्व-शक्ति के बाधक नहीं। उनसे कविता का संगति-सौंदर्य बहुत कुछ बढ़ जाता है। हम यह नहीं कहते कि हिंदी में अनुप्रास-हीन और बेतुकी कविता न हो, पर हमारा यह अनुरोध अवश्य है कि ऐसी कविता के प्रेमी और समर्थक सानुप्रास और तुकदार कविता के बहिष्कार का आंदोलन न उठावें। वे इच्छानुसार बेतुकी और अनुप्रास-हीन कविता करें, और उस प्रकार की कविता की उत्कृष्टता दिखाकर लोगों को अधिकाधिक संख्या में अपना अनुयायी बनावें। पर दूसरी प्रकार की कविता के प्रति घृणा और उपहास के भाव न फैलावें। हिंदी-साहित्य की उर्वरा भूमि में......अनुप्रास और तुक की बेल ख़ूब फैल चुकी है। उसने तन्मयता, मनोरंजन और सौंदर्य की वृद्धि में सहायता भी पहुँचाई है। अभी ऐसे कवि मौजूद हैं, और अधिक संख्या इन्हीं लोगों की है, जो तुक और अनुप्रास का सफलता-पूर्वक व्यवहार कर सकते हैं। भूतकाल में भी अनुप्रास और तुक की परीक्षा पर्याप्त हो चुकी है। उसमें कविगण सफल रहे हैं। इसलिये...उनका बहिष्कार नहीं किया जा सकता। हिंदी-कविता में उनका स्थान निश्चित हो चुका है, वे अमर हैं।"

अतुकांत कविता तुकांत कविता से तन्मयता, मनोहरता और सौंदर्य में फीकी भले ही हो, पर यदि उसमें सरसता है, भावोत्कृष्टता है, तो वह कविता अवश्य है। कई लोग जो अतुकांत कविता की निंदा करते हैं, उसे भद्दी कहते हैं, उन्हें तुकांत कविता के प्रबल पक्षपाती व्रजभाषा के सुकवि, मर्मज्ञ साहित्यिक स्वर्गीय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के निम्न-

लिखित कथन को ध्यान में रखना चाहिए। पूर्णजी ने लिखा है—"जिन छंदों में तुक अपरित्याज्य है, उनमें तुक का न लाना अवश्य बेतुकापन होगा, परंतु बहुत-से छंद ऐसे हैं, जो धारा-प्रवाह कविता करने के लिये उपयोगी हैं, और जिनमें तुक न लाने से काव्य-सौंदर्य में हानि न होगी।...इसके लिये भाषाओं की जननी संस्कृत को देखो।"

(चंद्रकला भानुकुमार-नाटक की भूमिका)

छंद-शास्त्र की सरलता

छंद के स्वरूप पर अत्यंत संक्षेप में प्रकाश डालने के पूर्व मैं यहाँ इतना निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि हिंदी के कवियों को छद-शास्त्र की विशालता से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। छंद-शास्त्र के संपूर्ण विस्तार को जानने की प्रत्येक कवि को कुछ ऐसी आवश्यकता भी नहीं है। हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार महाकवि श्रीबिहारीलाल-जैसों ने अपनी समग्र रचना केवल दोहा-छंद में समाप्त कर दी है। और भी अनेक ऐसे कवीश्वर हैं, जिन्होंने दो-चार छंदों में ही अपनी समग्र रचना रख दी है। पर इतना ध्यान रहे कि छंद की तौल उसकी ध्वनि से ही हो सकती है, और छदों की यथार्थ तुला कान ही हैं। आचार्य-प्रवर महाकवि केशवदासजी ने तो 'कविप्रिया' में स्पष्ट कहा है—

तौलत तुल्य रहै न ज्यों कनक-तुला तिल आध,
त्यों ही छंदोभंग को सह न सकत श्रुति साध।

इसी कारण ध्वनि का ज्ञान न होने से पिंगल के नियम को पालन करने पर भी कभी-कभी छंद ठीक नहीं बन पाते। छंद-शास्त्र के अनुसार दोहा-छंद के प्रथम एवं तृतीय चरणों में तेरह-तेरह और द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु-लघु का नियम है। परंतु दोहा-छंद की ध्वनि न मिलने से उक्त नियम के पालन करने पर भी दोहा-छंद नहीं बन पाता। जैसे—

(१) गोविंद नाम जाहि में, संगीत भलौ जान। (ध्वनि-हीन)
(२) सीताबरै न भूलिए जौ लौं घट में प्रान। (ध्वनि-युक्त)

इन दोनो में गुरु-लघु का क्रम, मात्रादि की गणना तथा अंत में गुरु-लघु का क्रम बिलकुल एक ही है, पर दोनो में आकाश-पाताल का अंतर है। वास्तव में छंद-रचना ध्वनि ही से होती है। जिसको छंद की ध्वनि या लय सिद्ध हो जाती है, उसे छंद-रचना एक स्वाभाविक बात-सी हो जाती है। यहाँ कई लोग कहेंगे कि जब ऐसा है, तब छंद-शास्त्र की आवश्यकता ही क्या ? वह तो बिलकुल निरर्थक ही है। परंतु ऐसे लोगों को ध्यान रखना चाहिए कि उनका कथन निर्मूल है। जिस प्रकार भाषा और व्याकरण का संबंध है, उसी प्रकार छंद और पिंगल का संबंध है। भाषा के बोलने का काम जिस प्रकार विना व्याकरण के चल सकता है, उसी प्रकार छंद-रचना का कार्य भी विना पिंगल के चल सकता है। हाँ, एक बात अवश्य है। जिस प्रकार सुंदर, सुसंगठित, प्रयोग-साम्य, मनोहारिणी, विशुद्ध साहित्यिक भाषा का काम विना व्याकरण के नहीं चल सकता, उसी प्रकार छंद-रचना

की मनोहरता और शुद्धि एवं निर्दोषिता विना छंद-शास्त्र के नहीं रह सकती। इसी से जैसे भाषा को व्याकरण चाहिए, वैसे ही छंद-रचना को पिंगल चाहिए। यह तो विद्वानों की वस्तु है, एवं महान् उपयोगी है।

छंद

जिस प्रबंध में चार चरण हों, चारो चरणों में वर्णों या मात्राओं की एक विशेष नियम के अनुसार समानता हो, विराम या गति की समता हो, तथा विशेष ध्वनि या लय हो, वह छंद है। यह दो भागों में विभक्त है—(१) शुद्ध और (२) मीलित। शुद्ध छंद में चार चरण रहते हैं, और दो शुद्ध छंदों के योग से मीलित छंद बनते हैं। जैसे—

(१) मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय,
जा-तन की झाँईं परे स्याम हरित-दुति होय।

यह शुद्ध छंद है, जिसके चार चरण हैं।

(२) मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय,
जा-तन की झाँईं परे स्याम हरित-दुति होय।
स्याम हरित-दुति होय, मिटहिं सब सोक-कलेसा;
नासै चित को भरम, रहै नहिं दुख-लवलेसा।
कहे पठान सुलतान काट मम दुख की बेरी;
राधा, बाधा हरौ, हहा! बिनती सुन मेरी।

यह मीलित छंद है, जो दोहा और रोला दोनो के संयोग से बना है। अंतिम चार चरण इसमें रोला-छंद के हैं।

संपूर्ण छंद प्रधानतया दो प्रकार के हैं—(१) वर्ण-वृत्त और (२) मात्रिक छंद। सच पूछो, तो वर्णिक और मात्रिक दोनो ही छंद हैं, परंतु प्राचीन आचार्यों ने जो वर्णिक की संज्ञा वृत्त और मात्रिक की संज्ञा छंद मानी है, उसका कारण यह है कि वर्ण-वृत्त क्रमबद्ध हैं, और मात्रिक छंद स्वच्छंद विहारी हैं।

वर्ण-वृत्त उसे कहते हैं, जिसके प्रत्येक चरण में वर्णों का क्रम और उनकी संख्या आदि से अंत तक समान हो। जैसे—

जय राम सदा सुख-धाम हरे, रघुनायक शायक-चाप धरे;
भव-वारण-दारुण सिंह प्रभो, गुण-सागर नागर नाथ विभो!

मात्रिक छंद वह है, जिसके चारो चरणों में केवल मात्राओं की संख्या का नियम हो, वर्ण चाहे जितने हों। जैसे—

कबि-कोबिद पालत हुते जे नरपाल सुजान,
पालत आज खुसामदी, मोटर, गनिका, स्वान।

इन दो मुख्य भेदों के भी (१) सम, (२) अर्द्ध-सम और (३) विषम-नामक तीन-तीन उपभेद हैं। सम के (१) साधारण और (२) दंडक-नामक दो प्रकार हैं।

(१) सम—जिन पद्यों के चारो चरण समान हों, वे सम छंद या वृत्त कहाते हैं।

(२) अर्द्ध-सम—जिनके प्रथम और तृतीय अर्थात् विषम चरण एक-से होते हैं, तथा दूसरे और चौथे अर्थात् सम चरण एक-से होते हैं, वे अर्द्ध-सम छंद या वृत्त कहाते हैं।

(३) विषम —जिन पद्यों के चरण असमान होते हैं, वे विषम कहाते हैं।

इसके सिवा मात्रिक छंदों में ३२ मात्राओं तक के छंद और वर्ण-वृत्त में २६ वर्णों तक के वृत्त सम होते हुए भी साधारण कहलाते हैं। और, ३२ मात्राओं तथा २६ वर्णों से अधिक के छंद तथा वृत्त दंडक कहाते हैं।

इनके सिवा कुछ छंद ऐसे भी होते हैं, जिनमें मात्रा तथा वर्ण, दोनो का विचार होता है। इन्हें गण-छंद कहते हैं। आर्य-साहित्यकारों के मतानुसार—

आदौ तावद्गणच्छन्दो मात्राछन्दस्ततः परम्;
तृतीयमक्षरश्छन्दश्छन्दस्त्रेधा तु लौकिकम्।

अर्थात्, "उसमें प्रथम गण-छंद, उसके पश्चात् मात्रिक छंद और तीसरा वर्ण-वृत्त है। इस प्रकार लौकिक छंद तीन प्रकार के होते हैं।"

इन छंदों के विभिन्न नामों और संख्या के लिये पिंगल-ग्रंथ द्रष्टव्य हैं। यहाँ एक बात और कथनीय है। वह यह कि जिनके द्वारा अनेक प्रकार के छंदों के विचार एवं उनकी संख्या आदि का बोध होता है, उन्हें पिंगल-शास्त्र में प्रत्यय कहते हैं। प्रत्यय नौ हैं—(१) प्रस्तार, (२) सूची, (३) पाताल, (४) उद्दिष्ट, (५) नष्ट, (६) मेरु, (७) खंड-मेरु, (८) पताका और (९) मर्कटी।

अलंकार

काव्य में अलंकार की भी आवश्यकता है। अलंकार-शास्त्र बहुत ही आवश्यक शास्त्र है। आचार्य दंडी ने कहा है—

वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते।

अर्थात्, "संसार का व्यवहार वाणी ही की कृपा से चलता है।"

तथा—इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्;
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।

अर्थात्, "यदि शब्द(भाषा)-रूपी ज्योति संसार के आरंभ से लेकर महाप्रलय तक प्रकाशमान न रहती, तो संपूर्ण तीनो लोकों में घोर अंधकार रहता।"

अग्निपुराण में अलंकार-शास्त्र को आवश्यक बतलाते हुए भगवान् वेदव्यास ने अर्थालंकार-निरूपण के आरंभ ही में लिखा है—

अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते;
तं विना शब्दसौंदर्यमपि नास्ति मनोहरम्।

अर्थात्, "जो अर्थ को सुशोभित करनेवाला है, वही अर्थालंकार है। उसके विना शब्द का सौंदर्य भी मनोहर नहीं होता।"

व्यासजी के इसी वाक्य का अनुसरण करते हुए महाराजा भोजदेव अपने 'सरस्वती-कंठाभरण' में अलंकार को 'अलमर्थमलङ्कर्त्तुः' अर्थात् सुंदर अर्थ को अलंकृत करनेवाला मानते हैं। अर्थालंकार के विषय में तो व्यासजी ने अग्निपुराण में स्पष्ट घोषणा की है—

'अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती।

अर्थात्, "अर्थालंकार-रहित सरस्वती (वाणी) विधवा के समान (श्री-विहीन) है।'

अलंकार-शास्त्र और उसकी उपयोगिता

वेदव्यासजी का उपर्युक्त मत बड़ा ही विचार-पूर्ण है। कोई भी धार्मिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक या राजनीतिक ग्रंथ अलंकार-रहित नहीं मिलेगा, कोई भी शास्त्र अलंकार-शास्त्र को त्यागकर नहीं चल सकता। तात्पर्य यह कि अलंकार-शास्त्र अत्यंत आवश्यक है। न्याय-शास्त्र भी उपमान-प्रमाण को मानता है। उसे भी उपमा-अलंकार का आश्रय लेना पड़ता है। यथार्थ में जो बात शब्द और अनुमान-प्रमाण द्वारा कभी ध्यान में भी नहीं आ सकती, जो अप्रत्यक्ष है, उसका बोध उपमा से शीघ्र ही हो जाता है। वस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये उसी प्रकार के रूप-गुणवाली वस्तु का ध्यान कराना कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है। साधारण बोलचाल में भी—नित्य के व्यवहार में भी—अलंकार की आवश्यकता होती है। इसी कारण आचार्यों ने विवेचना करके अलंकार को एक पृथक् शास्त्र माना है, जो सर्वथा उपयुक्त है। यदि भारतीय अलंकार-शास्त्र की गहनता पर विचार करें, तो यही कहना पड़ेगा कि अलंकार-शास्त्र दर्शन-शास्त्र के समान गहन है।

लोगों की दृष्टि में अलंकार-शास्त्र कोई प्रयोजनीय या आवश्यक शास्त्र नहीं। ऐसे लोग कभी-कभी कह उठते हैं कि अलंकार-शास्त्र पर विचार करनेवाले विलक्षण प्रतिभा-संपन्न विद्वानों का प्रयास व्यर्थ ही है। वे अपने जीवन के अमूल्य समय को व्यर्थ ही नष्ट कर गए हैं। ऐसे लोगों से कहा ही क्या जा सकता है? इनके दल में कुछ ऐसे भी लोग हो गए हैं, जो दर्शन-शास्त्र आदि को व्यर्थ का पचड़ा समझ बैठते हैं।

अलंकारों को अनावश्यक समझनेवाले लोगों को ध्यान रखना चाहिए कि यदि अलंकार-शास्त्री उनसे अलंकार छीन लें, तो संसार का व्यवहार चलना असंभव-सा हो जाय। 'इस प्रकार', 'इसी तरह', 'ऐसा' आदि शब्द भाषा से एकदम निकल जायँगे। भाषा बिलकुल नग्न हो जायगी—निरानंद हो जायगी।

भाषा-सौंदर्य को अक्षुण्ण रखने के लिये, संसार के व्यापार को क़ायम रखने के लिये, भिन्न-भिन्न विषयों और शास्त्रों की विवेचना करने के लिये अलंकार-शास्त्र की अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है। अलंकार-शास्त्र के विरोधी यहाँ पर यह कह सकते हैं कि जब विना अलंकार-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किए ही लोगों का काम चल सकता है, तब अलंकारों के जानने की क्या आवश्यकता? क्या यह व्यर्थ का बोझा नहीं है? ऐसे प्रश्न करनेवालों से मैं तो यही कहूँगा कि जब विना गणित-शास्त्र जाने संसार का व्यवहार चल सकता है, तब गणित-शास्त्र के अध्ययन की क्या आवश्यकता? जब विना समाज-शास्त्र का अध्ययन किए मनुष्य

समाज में आजन्म निभ सकता है, तब समाज-शास्त्र की क्या आवश्यकता ? जब विना ज्योतिष् या खगोल-शास्त्र के अध्ययन के लोग दिन और रात जान सकते हैं, बार और मास जान सकते हैं, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष जान सकते हैं, तब ज्योतिष् या खगोल-शास्त्र की क्या आवश्यकता ? जब विना राजसत्ता के—विना सामाजिक प्रबंध के—लोग अपना व्यवहार चला सकते हैं, तब किसी भी प्रकार की राजसत्ता (Government) या समाज की क्या आवश्यकता ? जब विना अर्थ-शास्त्र का अध्ययन किए लोग अपना ख़र्च चला सकते हैं, प्रबंध कर सकते हैं, तब अर्थ-शास्त्र की क्या आवश्यकता ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर यही मिलेगा कि कार्य तो चल सकता है, पर सुचारु रूप से नहीं चल सकता। कार्य चलना और बात है, तथा कार्य का सुचारु रूप से संपादन होना और बात। मैं भी यहाँ यही कहता हूँ कि अलंकार-शास्त्र के अध्ययन के विना भी भाषा का लिखना और बोलना हो सकता है, पर सुचारुतया नहीं।

संसार में आज जो मधुर और प्रौढ़ भाषा बोली जाती है, शिक्षित-समाज जिस भाषा को अपनाए हुए है, जो भाषा शिक्षित सभ्य-समाज को अशिक्षित, असभ्य, जंगली लोगों से श्रेष्ठ बनाए है, वह अलंकार के आश्रित है। सभ्यता की निशानी, उन्नतावस्था का चिह्न किसी राष्ट्र की आलंकारिक प्रौढ़ भाषा ही है। आचार्य जयदेव का मत है—

अगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ;
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती। (चंद्रालोक)

अर्थात्, "जो अलंकार-रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है, वह अग्नि को उष्णता-रहित क्यों नहीं मानता ?

मेरी समझ में चंद्रालोककार आचार्य जयदेव का मत बहुत ही समीचीन है। जिसमें चित्त को चमत्कृत करनेवाला, अलौकिक आनंद देकर हृदय को रस-पूरित करनेवाला गुण न हो, वह कविता ही कैसी ? जिस कविता में कुछ चमत्कार होगा, उसमें अलंकार अवश्यमेव होगा। उसमें चाहे अर्थालंकार हो, चाहे शब्दालंकार हो, चाहे उभयालंकार हो, होगा अवश्य। कहीं-कहीं अलंकार अस्फुट दशा में भी होता है। ऐसी स्थिति में अलंकार-शास्त्र-वेत्ता उसे अलंकार नहीं मानते। वे कहते हैं, जहाँ अलंकार स्फुट हो, वहीं अलंकार की सत्ता मानी जानी चाहिए। उनका मत है कि अलंकार अस्फुट दशा की में चमत्कार रस का होगा, अलंकार का नहीं। इसी दृष्टि में आचार्य-प्रवर भाम मम्मट ने लिखा है—

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।
(काव्यप्रकाश)

अर्थात्, "दोष-रहित और गुण-सहित शब्द और अर्थ काव्य है। फिर कहीं अलंकार-रहित भी काव्य होता है।"

अलंकार से काव्य में, वस्तु-वर्णन में, विशेष सहायता प्राप्त होती है। रस-परिपाक के लिये, वस्तु के विशद चित्र को स्पष्ट करने के लिये एवं व्यापार के चित्र को चटकीला बनाने के

लिये काव्य में अलंकारों की बड़ी आवश्यकता होती है। यदि हम कहें कि श्रीकृष्ण की आँखें बड़ी-बड़ी थीं, तो इससे हमें यह भी नहीं जान पड़ता कि वे कितनी बड़ी थीं ? क्या वे इतनी बड़ी थीं कि उनके देखने से भय उत्पन्न होता था ? या उनसे भद्दापन टपकता था ? क्या उनका आकार आवश्यकता से बहुत अधिक था ? ऐसी स्थिति में हमें अलंकार का आश्रय लेना पड़ता है। हम कहते हैं, वे आँखें मृग-शावक की आँखों के समान विशाल थीं। इससे हमें तुरंत ही यह बोध हो जाता है कि कृष्ण की आँखें मृग के बच्चे की आँखों के समान सुंदर, कटीली और जितनी चाहिए, उतनी आयत थीं, जिनसे सौंदर्य टपका पड़ता था।

अलंकार-भेद

अलंकार-शास्त्र के आचार्यों ने, सर्वसम्मत से, अलंकारों को तीन प्रधान भागों में विभाजित किया है—(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) शब्दालंकार—जहाँ शब्दों में चमत्कार रहता है, वहाँ शब्दालंकार होता है। स्मरण रहे, शब्दालंकार-पूर्ण वाक्य में शब्दालंकार के शब्दों के पर्यायवाची शब्द रखते ही शब्दालंकार न रहेगा। जैसे--

कनक कनक तैं सौगुनी मादकता अधिकाइ,
उहिं खाएँ बौरात हैं, इहिं पाएँ बौराइ।
(बिहारी)

इसमें 'कनक कनक' के प्रयोग में शब्दालंकार है। यदि हम कनक का पर्यायवाची 'धतूरा' या 'स्वर्ण' लिख दें, तो फिर इसमें कोई चमत्कार न रहेगा।

शब्दालंकार का प्रयोग भाषा का सौंदर्य बढ़ाने के उद्देश्य ही से किया जाता है। कहीं-कहीं इनसे भाव भी कुछ ज़ोरदार हो जाता है। मेरे विचार से तो शब्दालंकारों का विचार भाषा के साथ ही होना चाहिए, क्योंकि यथार्थ में ये भाषा-सौंदर्य के बढ़ानेवाले ही होते हैं।

(२) अर्थालंकार —यथार्थ में अर्थालंकार ही प्रधान अलंकार हैं, और इसी से भगवान् व्यासदेव आदि ने इन्हें ही आवश्यक माना है। अर्थालंकार वहाँ होता है, जहाँ अर्थ में चमत्कार होता है। इससे तात्पर्य यह कि यदि हम अर्थालंकार को निकालकर किसी वाक्य का अर्थ कहें, तो उसमें फिर वैसी रोचकता एवं सुंदरता न रह जायगी। जैसे, 'मुख चंद्र-सा सुंदर है', इस वाक्य को यदि हम अर्थालंकार-हीन करके कहें, तो इसका यह रूप होगा कि 'मुख सुंदर है।' इस रूप में ज्योति, स्निग्धता और शांतिप्रदायिनी मनोहरता का अर्थमय चमत्कार नहीं रह जाता।

(३) उभयालंकार—उपर्युक्त दोनो अर्थात् शब्दालंकार और अर्थालंकार के विशुद्ध रूपों के अतिरिक्त ऐसे अलंकारोदाहरण भी पाए जाते हैं, जिनमें एक से अधिक अलंकार दर्शित होते हैं। इनमें कहीं दो और कहीं दो से अधिक शब्दालंकार या अर्थालंकार, मिश्रित रूप से, आते

हैं। इनमें कहीं शब्दालंकार से शब्दालंकार का, कहीं शब्दालंकार से अर्थालंकार का और कहीं अर्थालंकार से अर्थालंकार का मिश्रण रहता है। यह मिश्रण भी द्विविध है—(१) संसृष्टि और (२) संकर। जहाँ संपूर्ण मिश्रित अलंकार तिल-तंदुल के समान पृथक्-पृथक् सत्ता में प्रकट रहते हैं, वहाँ संसृष्टि-अलंकार होता है, और जहाँ क्षीर-नीर के समान अभिन्न रूप में तदाकार रहते हैं, वहाँ संकर अलंकार होता है।

इन संपूर्ण अलंकार-भेदों के अनेक उपभेदों की दार्शनिक मीमांसा अलंकार-शास्त्र पर लिखे गए अनेक ग्रंथों में द्रष्टव्य है। इस शास्त्र की विद्वत्ता-पूर्ण विवेचना-शैली पर बुद्धि मुग्ध हो जाती है, और मन नाचने लगता है। यद्यपि अलंकारों की उत्पत्ति काव्य में स्वाभाविक है, पर इनका प्रयोग सिखलाना एवं प्रयोग के औचित्य-अनौचित्य एवं उत्कर्ष-अपकर्ष आदि पर वैज्ञानिक सरणी से विचार कर, उनका यथोचित ज्ञान देकर उनके पूर्ण आनंद का उपभोक्ता बनाना अलंकार-शास्त्र का कार्य है। अलंकारों में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा एवं स्वभावोक्ति, ये अर्थालंकार और अनुप्रास, यमक तथा श्लेष, ये शब्दालंकार सर्व-मत से प्रधान अलंकार हैं। उत्तम काव्य में इनका ही प्रयोग प्रधान रूप से पाया जाता है।

काव्य में रीति

अलंकार के बाद अब काव्य में रीति और रह गई। रीति के विषय में कविराजा मुरारिदानजी की प्रामाणिक संक्षिप्त विवेचना अत्यंत समीचीन हुई है। हम उसे पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। वह यह है—

"देश, जाति आदि भेद से मनुष्यों में रीति-भेद अर्थात् रिवाज में भेद होता है, वैसे ही काव्य-रचना में भी देश आदि भेद से रीति-भेद होता है। पांचाल-देश की काव्य-रचना लौकिक व्यवहार और शास्त्रीय व्यवहार-युक्त कोमल और छोटे-छोटे समासोंवाली होती है, इसलिये ऐसी काव्य-रचना में पांचाली रीति कहलाती है। गौड़-देश की काव्य-रचना लौकिक व्यवहार और शास्त्रीय व्यवहार करके रहित, नियम-रहित और दीर्घ समासोंवाली होती है, इसलिये ऐसी काव्य-रचना में गौड़ी रीति कहलाती है। वेदव्यास भगवान् ने अग्निपुराण के तीन सौ चालीसवें अध्याय में इनके लक्षण कहे हैं—

उपचारयुता मृद्वी पांचाली ह्रस्वविग्रहा;
अनवस्थितसंदर्भा गौडीया दीर्घविग्रहा।
उपचारैर्न।

"जो रीति उपचार अर्थात् व्यवहार करके युक्त होवे, कोमल होवे, और जिसमें छोटे-छोटे समास होवें, वह पांचाली; जिस रीति में कोई व्यवस्था नहीं अर्थात् नियम नहीं, उपचार अर्थात् व्यवहार नहीं और दीर्घ समास होवें, वह गौड़ी। इसी प्रकार विदर्भ-देश की काव्य-रचना की रीति वैदर्भी और लाट देश की काव्य-रचना की रीति लाटी कहलाती है, इत्यादि। कौशिक मुनि की काव्य-रचना की रीति कौशिकी कहलाती है।...भरत मुनि की काव्य-रचना की रीति भारती कहलाती है, इत्यादि। ग्रंथ-विस्तार-भय से यहाँ सबके लक्षण, उदाहरण नहीं दिखाए गए

हैं। हमारे मत उक्त रीतियों का काव्य की रमणीयता में कुछ भी उपयोग नहीं है। इसीलिये बहुत-से ग्रंथकारों ने रीतियाँ नहीं कही हैं। बहुधा हरेक देश की काव्य-रचना भिन्न-भिन्न रीति से होती है।''

(जसवंत-जसोभूषण, पृष्ठ १४२-१४३)

सारांश

इस प्रकार काव्य में रस, ध्वनि (व्यंग्य), लक्षणा, अभिधा, माधुर्यादि गुण, छंद एवं अलंकार आदि आ जाते हैं। इनसे यथोचित-संपन्न विशुद्ध पद्य-लेख ही साहित्यिकों की दृष्टि में काव्य होता और स्थायित्व ग्रहण करता है। इसका ज्ञान अत्यंत आवश्यक होने के कारण ही साहित्य में रीति-ग्रंथों का प्रणयन किया गया है। उन ग्रंथों में ये विषय विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। यहाँ तो मैं स्थानाभाव के कारण इनका, संक्षेप में, स्थूल रूप से उल्लेख-मात्र कर सका हूँ।

२. ब्रजभाषा और उसका साहित्य

ब्रजभाषा का महत्त्व और विशालता

यहाँ प्रसंग-वश ब्रजभाषा के विषय में कुछ निवेदन करना आवश्यक जान पड़ता है, क्योंकि कई सौ वर्ष तक ब्रजभाषा ही अधिकांश भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा और काव्य-भाषा के सिंहासन पर आसीन रही है, और आज भी सजीव और प्रचलित काव्य-भाषा है। इसका साहित्य अत्यंत समुन्नत और विशाल है। राष्ट्र-भाषा हिंदी का सर्वोत्कृष्ट अंग ब्रजभाषा में ही है। पर खेद है कि अनेक व्यक्तियों की ऐसी मिथ्या धारणा हो गई है कि हिंदी अन्यान्य प्रांतीय भाषाओं के मुक़ाबले हीन है। ये लोग न तो परिश्रम करके हिंदी-साहित्य का अध्ययन करना चाहते हैं, और न हिंदी-साहित्य-विशारदों से उसके विषय में पूछ-ताछ ही करना चाहते हैं। इतने पर भी अनधिकार चेष्टा करके हिंदी-साहित्य को हीन कह बैठते हैं! इनमें से अधिकांश अँगरेज़ी के भक्त हैं, और कुछ संस्कृत के प्राचीन पंडित तथा बँगला और मराठी के हिमायती। हिंदी के समान अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं में प्रसरित विशाल साहित्य और प्रांतीय भाषाओं में हो ही कैसे सकता है? कारण, इसमें ही तो हिंदू-जाति के गत ९०० वर्षों के उत्थान तथा पतन का भिन्न-भिन्न भावनामय, सजीव शब्द-चित्र अंकित है। इसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, प्रकृति-पर्यवेक्षण, धर्म और नीति की ऐसी विशद आलोचना हुई है, जिसकी समता नहीं।

हिंदी-साहित्य का गौरव

किसी जाति को जीवित रखने में साहित्य कहाँ तक सहायता पहुँचा सकता है, इसे जानना हो, तो हिंदी के प्राचीन साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। हिंदू-जाति की रक्षा करने में इसका बड़ा हाथ है। फिर संस्कृत को छोड़कर अन्य किसी भारतीय भाषा में ऐसा समुन्नत साहित्य है भी नहीं। यह बात मैं ही नहीं कहता, बड़े-बड़े पंडितों का भी यही

मत है। भारत-प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉक्टर राजेंद्रलाल मित्र एल्-एल्० डी०, सी० आई० ई० अपने 'Indo-Aryans'-नामक पुरातत्त्व-विषयक ग्रंथ में लिखते हैं—

"The Hindi is by far the most important of all the vernacular dialects of India. It is the language of the most civilised portion of the Hindu race. Its history is traceable for a thousand years and its literary treasures are richer and more extensive than of any other modern Indian dialect."

अर्थात्, "भारत की सब भाषाओं में हिंदी ही सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। वह हिंदू-जाति के सबसे अधिक सभ्य अंग की भाषा है। उसके इतिहास का पता आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व से लगता है, और उसका साहित्य-भांडार भारत की किसी भी वर्तमान भाषा (बँगला, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि) की अपेक्षा अधिक वैभवशाली और विस्तृत है।"

भारत की वर्तमान भाषाओं के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले सुप्रसिद्ध विद्वान् सिविलियन मिस्टर बीम्स (Mr. Jhon Beams) अपनी पुस्तक 'Comparative Grammer of the Modern Aryan Languages of India' में लिखते हैं—

"Hindi represents the oldest and most widely diffused form of Aryan speech in India. In respect of Tadbhavas Hindi stands preeminent."

अर्थात्, "भारत में आर्यों की सबसे प्राचीन और विशाल क्षेत्र में प्रचलित भाषा हिंदी है। इसमें तद्भव शब्द अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक हैं।"

सन् १९०१ ईस्वी की मनुष्य-गणना के विवरण में लिखा है—

"In themselves, without any extraneous help whatever the dialects from which it (Hindi) is sprung are, and for five hundred years have been, capable of expressing with crystal clearness any idea which the mind of man can concieve. It has an enormous native vocabulary and a complete appratus for the expression of abstract terms. Its old literature contains some of the highest flights of poetry and some of the most eloquent expressions of religious devotion which have found their birth in Asia. Treatises on Philosophy and on Rhetoric are found in it, in which the subject is handled with all the subtlety of the great Sanskrit writers and has hardly the use of a Sanskrit word."

अर्थात्, "जिन वैदिक बोलियों से स्वतंत्रतया, विना किसी सहायता के, हिंदी-भाषा बनी है, वे पाँच सौ वर्षों से अत्यंत स्पष्टता-पूर्वक मनुष्यों के मनोभावों को प्रकट करने में सक्षम हैं। हिंदी का भारी शब्द-भांडार स्वतंत्र रूप से उसकी निजी संपत्ति है, अर्थात् वह संस्कृत एवं प्राकृत आदि किसी भी भाषा से नहीं लिया गया है। उसे मनुष्यों ने प्रकृत रूप से ग्रहण किया है। इस भाषा में कठिनातिकठिन—गहनातिगहन—परिभाषाओं को सुस्पष्ट-तया प्रकटित करने की पूर्ण सामर्थ्य है। इसके प्राचीन साहित्य में कवि-कल्पना की ललित, गंभीर, ऊँची उड़ान (बलंदपरवाज़ी)-युक्त सर्वोच्च काव्य और उन धर्म-भक्ति के धारा-प्रवाही, गंभीर गवेषणामय विवेक-विचारों से युक्त ऐसा धार्मिक साहित्य है, जिसका जन्म एशिया में हुआ है। उसमें दर्शन और अलंकार—लौकिक और पारलौकिक साहित्य—पर लिखे गए अनेक ग्रंथ-रत्न पाए जाते हैं, जिनमें अपने विषय का वर्णन इतना उच्च कोटि का है, जितना विश्व-पूज्य महर्षियों-सदृश महान् लेखकों द्वारा प्रणीत संस्कृत-साहित्य के ग्रंथ-रत्नों में है। उनमें विषयों का मार्मिक वर्णन और उन पर की गई विचार-प्रणाली की श्रेष्ठता वैसी ही है, जैसी उस विषय के संस्कृत-ग्रंथों की। इतने पर भी विशेषता यह है कि ऐसे सर्वोच्च विषयों पर लिखे गए ऐसे उत्कृष्ट ग्रंथ वे हैं, जिनमें हिंदी का निजी शब्द-भांडार है। अन्य किसी भाषा का कोई शब्द नहीं है।"

जो हिंदी-साहित्य को मराठी-साहित्य से हीन समझते हैं, वे यह देखें कि मराठी के सर्वश्रेष्ठ कवि, महाराष्ट्र-कोकिल महाकवि मयूर पंत (मोरो पंत) अपनी रचनाओं में हिंदी-कवियों के विषय में कैसा आदरणीय भाव व्यक्त कर गए हैं। उनका मत उन्हीं की भाषा में देखिए, कैसी झलक दिखला रहा और हिंदी की शोभा सरसा रहा है। लिख गए हैं—

श्रीसूरदास, तुलसीदास कबीरादि सुकवि कवनांतें;
सोडुनि, लावील, कवण रसिक दुजाशीं रिझोनि नवनांतें।

अर्थात् "वह कौन अभागा रसिक होगा, जो श्रीसूरदास, तुलसीदास, कबीरदास आदि हिंदी के सुकवियों के काव्यों को छोड़कर दूसरों से नवीन नाता जोड़े।"

बंगाली अपनी भाषा की प्रशंसा आवश्यकता से अधिक करते हैं, यहाँ तक कि उनका यह गुण औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर जाने के कारण दोष हो गया है। वे बंगाली भी हिंदी-साहित्य की गरिमा के क़ायल हैं। मैं विश्व-विख्यात कवि-श्रेष्ठ रवींद्रनाथ ठाकुर की बात नहीं कहता, वह तो सूर, तुलसी और कबीर आदि की रचनाओं के भक्त हैं ही, मेरा कथन तो यह है कि बंगाल के अन्य विद्वान् सज्जन भी हिंदी-साहित्य की गरिमा और गंभीरता पर पूर्णरूपेण मोहित हो जाते हैं। बंगाल के प्रसिद्ध देश-भक्त विद्वान् स्वर्गीय बाबू मनोरंजन ठाकुर अपनी 'निर्वासित कहानी'-नामक खोज-पूर्ण गवेषणामय पुस्तक में लिखते हैं—

"प्रायः तीन सौ वर्ष पहले स्वामी निश्चलदास ने 'विचार-सागर' और 'वृत्ति-प्रभाकर' की रचना की थी। वर्तमान वंगभाषा के वैभवशालिनी होने पर भी इस श्रेणी के ग्रंथ उसके भांडार में नहीं पाए जाते!"

कहाँ विद्वान् बंगाली साहित्यिकों का यह कहना और कहाँ हिंदी-भाषियों का यह कहना कि बँगला के सम्मुख हिंदी दीन-हीन है ! कैसी विषमता है !!

तात्पर्य यह कि हिंदी-साहित्य तो अगाध है, वैभवशाली है, हिंदी के सागरोपम विशाल साहित्य में प्रायः संपूर्ण विषयों के एवं संपूर्ण भावनाओं को प्रकट करनेवाले सब प्रकार के ग्रंथों का भांडार है । पर बात यह है कि समालोचना-प्रदीप के अभाव में हिंदी की निधि अंधकार में है । यथार्थ में तो हिंदी का साहित्य इतना समुन्नत है कि उसके प्रकाश में आते ही केवल भारत ही नहीं, वरन् संपूर्ण एशिया महाद्वीप गर्व से सीना फुलावेगा ।

हिंदी-गौरव का कारण

हिंदी के इस विशाल साहित्य के गौरवमय होने का प्रथम कारण यह है कि हिंदी के प्राचीन लेखकों तथा कवियों का ख़ूब ही सम्मान रहा है । जहाँ एक ओर हिंदी को हिंदू-नरेशों ने अपनाया, वहाँ दूसरी ओर मुसलमान बादशाहों और नवाबों ने भी इसे उन्नत बनाने में हाथ बँटाया । हम देखते हैं, ये बड़े-बड़े बादशाह और राजे-महाराजे हिंदी के सहायक ही नहीं, वरन् धुरंधर लेखक और कवि भी थे । संसार की किसी भी भाषा में इतने राजों, महाराजों तथा नवाबों और बादशाहों ने रचना नहीं की । इनमें चित्तौड़ाधिपति वीरवर महाराणा कुंभ, मुग़ल-सम्राट् अकबर, सेनापति नव्वाब अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना, महाराजा पृथ्वीराज (बीकानेर-नरेश), महाराजा मानसिंह, बीजापुर के बादशाह इब्राहीम आदिलशाह, बुंदेलखंड-केसरी महाराजा छत्रसाल, महाराजा इंद्रजीतसिंह (ओड़छा), महाराणा राजसिंह (मेवाड़), महाराजा राजसिंह (कृष्णगढ़), महाराष्ट्र-केसरी महाराजा शिवाजी, महाराजा संभाजी (सतारा), महाराजा सावंतसिंह (नागरीदास), महाराजा मुकुंदसिंह हाड़ा (कोटा-नरेश), महाराजा मानसिंह (जोधपुर), महाराजा सवाई जयसिंह (आमेर), महाराजा अजीतसिंह (जोधपुर-नरेश), महादाजी सिंधिया (ग्वालियर-नरेश), महाराजा जसवंतसिंह (जोधपुर), दौलतराव सिंधिया (ग्वालियर-नरेश), महाराज विक्रमादित्य (चरखारी-नरेश), मुग़ल-सम्राट् जहाँगीर, महाराजा रघुराज-सिंह (रीवाँ) तथा महाराज जसवंतसिंह (तिरवा-नरेश) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । यहाँ ध्यान से देखने पर यह जान पड़ता है कि एक ओर तो संपूर्ण मुग़ल-सम्राट् हिंदी के हितैषी और संरक्षक थे, यहाँ तक कि कालिदास और कृष्ण कवि-जैसे साहित्य-शास्त्र-निष्णात कवीश्वर औरंगज़ेब बादशाह के दरबारी कवि थे, दूसरी ओर हिंदुत्व की मर्यादा के रक्षक—हिंदू-जाति के रक्षक महाराणा कुंभ, महाराणा प्रताप, महाराणा राजसिंह, छत्रपति शिवाजी, महाराजा छत्रसाल, श्रीगुरुगोविंदसिंह और महाराजा माधवराव सिंधिया आदि नर-पुंगवों ने इसे हिंदुस्थान की राष्ट्र-भाषा समझकर इसे प्रबल प्रोत्साहन दिया ।

द्वितीय कारण यह है कि हिंदू-मुस्लिम-संघर्ष के कारण—दो विभिन्न सभ्यताओं और धर्मों के संघर्ष के कारण—जो एक व्यापक नवीन विचारों की धारा प्रवाहित हुई, उसका संपूर्णतया प्रभाव हिंदी-साहित्य पर पड़ा है । परिवर्तनशील युग के प्रभाव से हिंदी

में एक ऐसे नवीन धारा-प्रधान साहित्य की सृष्टि हुई, जो सर्वथा मौलिक है, और जो दोनो जातियों के हृदयों को एक में तल्लीन करने में पर्याप्त समर्थ है।

तृतीय कारण यह है कि हिंदू-मुस्लिम-संघर्ष के कारण पुनः धर्म-भाव की जागृति हुई, और हिंदू-धर्म की रक्षा के हेतु—पवित्र आर्य-सभ्यता की रक्षा के हेतु—सैकड़ों की संख्या में बड़े-बड़े संसार-त्यागी महात्मा हुए, जिन्होंने हिंदू-जाति एवं हिंदू-धर्म की रक्षा तो की ही, साथ-ही-साथ देश के कोने-कोने में पवित्रतम हिंदू-धर्म का संदेश पहुँचा दिया। उन्होंने ज्ञान, योग, वैराग्य, भक्ति एवं उपदेश पर बड़ी ही अनूठी रचनाएँ की हैं। इनके धर्म-ग्रंथ तात्त्विक दृष्टि से संसार के किसी भी धर्म-प्रवर्तक के ग्रंथ से सफलता-पूर्वक टक्कर ले सकते हैं। फिर इनके अनुयायियों में सहस्रों बड़े-बड़े महात्मा और उत्कृष्ट दार्शनिक ग्रंथकार हुए हैं, जिन्होंने अपने आध्यात्मिक बल से जनता को मुग्ध कर दिया एवं असंभव को भी संभव करके दिखला दिया था! नाभादासजी की भक्तमाल एवं उस पर लिखी गई प्रियादासजी की टीका देखने पर विदित होगा कि वे पूज्य साधु-श्रेष्ठ कैसे महात्मा थे। इनमें से कुछ के नामोल्लेख करना यहाँ असंगत न होगा। श्रीगुरु गोरखनाथ, स्वामी रामानंदजी, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीकबीरदास, श्रीगुरु नानक, श्रीगुरु गोविंदसिंह, श्रीदादूदयाल, श्रीहितहरिवंश, श्रीस्वामी हरिदास, श्रीचरणदास और श्रीप्राणनाथ आदि धर्माचार्य हैं, जिनके उपदेश विश्वपूज्य हैं, और जिनके लक्षावधि अनुयायी आज भी पाए जाते हैं। इन धर्माचार्यों तथा इनके महात्मा शिष्यों ने हिंदी में धार्मिक साहित्य की ख़ूब ही अभिवृद्धि की है। इनके लिखे ग्रंथों की संख्या सहस्रों पर है, जिनमें सैकड़ों अद्वितीय और परम मनोहर हैं। इन्हीं महानुभावों के अनुयायियों में से सूर और तुलसी आदि अनेक धुरंधर विद्वान् ग्रंथकार हुए हैं। इन विश्वपूज्य वंदनीय महात्माओं की वाणी से हिंदी का साहित्य पवित्र होकर निर्मल ज्योति प्रदर्शित कर रहा है।

ऐसी सर्वांगीण, समुन्नत, गौरवशालिनी तथा भाषाओं की बिंदी हिंदी को दीन-हीन कहना दुराग्रह, हठ या अज्ञानता के सिवा और क्या कहा जा सकता है? फिर पिछले पचास वर्षों से हिंदी का साहित्य जिस प्रगति से बढ़ रहा है, उसका भी तो अनुमान कीजिए। हिंदी में संपूर्ण विश्व का साहित्य धड़ल्ले से भरा जा रहा है। इसे देखकर उसका भविष्य भी अतीत के समान समुज्ज्वल जान पड़ता है।

ब्रजभाषा का विशाल साहित्य

हिंदी की प्रधान शाखा ब्रजभाषा ही है, और इसी में हिंदी का गौरव-पूर्ण, अधिकांश साहित्य है। इसमें अनेकानेक महाकाव्य हैं, जिनमें केशवदास का 'रामचंद्रिका-महाकाव्य', चिंतामणि त्रिपाठी-कृत 'रामायण', सबलसिंह चौहान-कृत 'महाभारत', छत्रसिंह-कृत 'विजय-मुक्तावली', रामप्रियाशरण-कृत 'सीतायन', जानकीरसिकशरण-कृत 'अवधसागर', जोधराज-कृत 'हम्मीर-महाकाव्य,' रघुनाथ-कृत 'जगत-मोहन', सरयूराम-कृत 'जैमिनि-पुराण', सूदन-कृत 'सुजान-चरित्र', गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव-कृत 'भाषा-भारत' और मधुसूदन-

दास-कृत 'रामाश्वमेध' आदि जैसे सर्वांगीण, उत्कृष्ट, कलामय, विविध ज्ञान-संपन्न महाकाव्य हैं । इनकी गरिमा का पूर्णतया ज्ञान उन्हें ही हो सकता है, जिन्होंने इन ग्रंथों को मनोयोग-पूर्वक देखा है । अन्यान्य भाषाओं में इनकी जोड़ के ग्रंथ-रत्न सर्वथा दुर्लभ हैं ।

ब्रजभाषा-साहित्य में खंड काव्यों की भी अच्छी संख्या है । इनमें नरहरि बंदीजन-कृत 'रुक्मिणी-मंगल', नरोत्तमदास-कृत 'सुदामा-चरित्र', पृथ्वीराज-कृत 'श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-चरित्र', मोहनदास-कृत 'रामाश्वमेध', परशुराम-कृत 'ऊषा-चरित्र', रसिकअली-कृत 'मिथिला-विहार', हरनारायण-कृत 'माधवानल-कामकंदला', पद्माकर-कृत 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली', चंद्रशेखर-कृत 'हम्मीर-हठ' और रामनाथ-कृत 'राम-कलेवा' आदि की रचना बड़ी ही मनोहारिणी हुई है ।

इन्हीं में हम ब्रजभाषा के कथा-काव्यों की गणना कर सकते हैं । इनकी भी पर्याप्त संख्या है, जिनमें श्रीतुलसीदासजी-कृत 'कवितावली-रामायण', 'गीतावली' और 'कृष्ण-गीतावली', हीरालाल-कृत 'रुक्मिणी-मंगल', मंडन-कृत 'जानकीजू का विवाह', आलम-कृत 'माधवानल-कामकंदला', मुरलीधर-कृत 'नलोपाख्यान' आदि अनेक प्रबंध हैं ।

ब्रजभाषा में प्रेम-काव्यों की भी रचना हुई है, जिसका आदर्श पुहकर कवि-कृत 'रस-रतन'-नामक काव्य में है, जिसमें २७६६ छंद तथा ४४६ पृष्ठ हैं ।

ब्रजभाषा में वैसे तो धर्म-नीति, समाज-नीति और राजनीति पर विशद छंद बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं, परंतु नरहरि बंदीजन-कृत 'नीति-छप्पय', ख़ानख़ाना नवाब रहीम-कृत 'रहिमन के दोहे', भरमी-कृत 'स्फुट नीति', बैताल-कृत 'नीति-छप्पय', वृंद-कृत 'वृंद-सतसई', देवीदास-कृत 'राजनीति के छंद' और कोविद कवि-कृत 'राज-भूषण' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं । इसके सिवा सैकड़ों संसार-त्यागी संतों ने लोक-रक्षा की, लोक-कल्याण की कामना से संसारी जीवों को जो अमूल्य उपदेश दिया है, उसका उत्कृष्ट वर्णन ब्रजभाषा में भरा पड़ा है । इसके अतिरिक्त संस्कृत के 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' एवं भर्तृहरि के नीति-शतक आदि-जैसे उत्तम ग्रंथों का अनुवाद तो ब्रजभाषा में प्राप्त होता ही है ।

ब्रजभाषा में वेदांत और योग के ग्रंथों का भी बाहुल्य है । इनमें केशवदास-कृत 'विज्ञान-गीता', सुंदरदास दादूपंथी-कृत 'सुंदर-विलास', 'ज्ञान-विलास', 'विवेक-चिंतामणि', 'सुंदर-सांख्य', कवींद्राचार्य-कृत 'योग-वासिष्ठसार', कविराज सुखदेव मिश्र-कृत 'अध्यात्म-प्रकाश', अक्षरअनन्य-कृत 'ज्ञान-योग', 'सिद्धांत-बोध', 'योगशास्त्र-स्वरोदय', 'ब्रह्मज्ञान', 'विवेक-दीपिका', 'अनुभव-तरंग' और 'राजयोग', देवदत्त-कृत 'योगतत्त्व', अनाथदास-कृत 'सर्वसार-उपदेश', चरणदास-कृत 'अष्टांगयोग' और 'ज्ञान-स्वरोदय', प्रियादास-कृत 'उपनिषद-सार' आदि ग्रंथ-रत्न हैं । इनके सिवा उपनिषदों के भी अनुवाद हैं । गीता पर भी अनेक गद्य-पद्यानुवाद हैं । साथ ही श्रीगुरु गोरखनाथ, श्रीकबीरदास, श्रीगरीबदास, श्रीचरणदास, श्रीमलूकदास आदि पंथ-प्रवर्तक संतों और उनके अनुयायियों की विशद वाणियों की बहुलता

है । इनमें श्रीनिश्चलदास-कृत 'वृत्ति-रत्नाकर', 'विचार-सागर' और 'युक्ति-प्रकाश'-जैसे अनेक अनूठे, अद्वितीय दार्शनिक ग्रंथ हैं, जिनकी समता की रचनाएँ संसार में केवल संस्कृत-साहित्य में ही प्राप्त हो सकती हैं । फिर धार्मिक साहित्य की तो ब्रजभाषा में ऐसी प्रचुरता है, जैसी संस्कृत-साहित्य को छोड़कर अन्य कहीं स्वप्न में भी संभव नहीं । इनमें अनेक पंथों और संप्रदायों के सिद्धांतों और आचारों पर एवं भक्ति, योग, वैराग्य आदि पर सैकड़ों उत्कृष्ट मौलिक ग्रंथ और श्रेष्ठतम संस्कृत-ग्रंथों के अनुवाद हैं । भक्ति-निरूपण पर ब्रजभाषा-साहित्य संसार में अद्वितीय हो प्रमाणित हुआ है, और होता रहेगा ।

पूज्य पुराण-ग्रंथों के श्रेष्ठतम अनुवाद ब्रजभाषा-साहित्य में भरे पड़े हैं । इस बात के लिये दामोदर कवि-कृत 'मार्कंडेय-पुराण', सरयूराय-कृत 'जैमिनि-पुराण', सदासुख-कृत 'विष्णु-पुराण', जयराम-कृत 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' आदि-आदि अनेक ग्रंथ हैं । भागवत-पुराण, देवी-पुराण, सूर्य-पुराण, शिव-पुराण, देवी-भागवत आदि के अनेक सरस अनुवाद ब्रजभाषा-साहित्य की शोभा बढ़ाते हैं ।

ब्रजभाषा-साहित्य के कोष में भिन्न-भिन्न विषय के ग्रंथों की भी कमी नहीं । इनमें प्रकृति-वर्णन, ऋतु-वर्णन, पक्षी-वर्णन, गज-वर्णन, अश्व-वर्णन, रत्नों की परख, आयुर्वेद, बाग़बानी, गणित, इतिहास, ज्योतिष, कोष, आख्यायिकाएँ आदि की मनोहर, सर्वांग-सुंदर रचनाओं से परिपूर्ण ग्रंथों की प्रचुरता है । इनमें से कुछ ये हैं—पृथ्वीराज-कृत 'प्रेम-दीपिका', चेतन-चंद्र-कृत 'अश्व-विनोद शालिहोत्र', ताहिर-कृत 'कोकशास्त्र', घासीराम-कृत 'पक्षी-विलास', सेनापति-कृत 'षड्ऋतु', बलभद्र-कृत 'वैद्य-विद्याविनोद', रायचंदनागर-कृत 'लीलावती', सुदर्शन-कृत 'चिकित्सा-दर्पण' और 'भिषक्प्रिया', लालदास-कृत 'इतिहास-सार-समुच्चय', गंगाधर-कृत 'विक्रम-विलास', नंददास-कृत 'अनेकार्थ' और 'नाममाला', कल्याण मिश्र-कृत 'अमरकोष', रतनभट्ट-कृत 'सामुद्रिक', श्रीधर-कृत 'संगीतसार', टेकचंद-कृत 'वृत्तकथाकोष', प्रेमीवमन-कृत 'अनेकार्थनाममाला', माधवदास-कृत 'मुहूर्तचिंतामणि', स्वामी मथुरानंद-कृत 'पातंजलियोग' और गुरुदत्त-कृत 'पक्षी-विलास' । इनमें से कुछ मौलिक और कुछ स्वतंत्र रूप से अनुवादित ग्रंथ हैं ।

जीवन-चरित्रों और उपदेश-पूर्ण कथा-वार्ताओं से भी ब्रजभाषा का साहित्य अलंकृत है । इनमें अधिकांश में उज्ज्वलतम चरित्रवाले पौराणिक महापुरुषों के चरित्रों की अनूठी भावमयी अवतारणा की गई है । इनकी संख्या सैकड़ों पर है । फिर तत्कालीन महात्माओं और महा-पुरुषों के जीवन-चरित्र भी मौजूद हैं । इनमें चरित्र-सुधार और भावना-परिष्कार का चमत्कार सर्वथा अनूठा और हृदयग्राही है । आधुनिक काल के उच्छृंखलता-प्रिय सज्जन इन्हें पसंद भले ही न करें, पर संसार का कल्याण करने में ये आदर्श ग्रंथ बड़े ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं ।

ब्रजभाषा-साहित्य में इतिहास-ग्रंथों की भी प्रचुर सामग्री है । जहाँ ऐतिहासिक व्यक्तियों पर काव्य-ग्रंथ और स्फुट प्रामाणिक रचनाएँ प्राप्त होती हैं, वहाँ सूर्यमल्ल चारण-

कृत 'वंश-भास्कर'-जैसा इतिहास-ग्रंथ भी है, जो ४३६८ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। इनमें हम अनेक ऐतिहासिक पुरुषों और उनके काल का सच्चा वर्णन पाते हैं।

राष्ट्रीय एवं जातीय साहित्य का भी ब्रजभाषा में ज़ोर रहा है। इस विभाग में बनवारी, हरिकेश, भूषण, लाल, सूदन, चंद्रशेखर आदि की रचनाएँ दर्शनीय हैं। इनसे विदित होता है कि किसी राष्ट्र के उत्थान में जातीय और राष्ट्रीय समर्थ कवियों की जीवनदायिनी सजीव वाणी कितना उपकार करती है! यद्यपि समय-समय पर राष्ट्रीयता का रुख़ बदलता रहता है, पर तत्कालीन राष्ट्रीय और जातीय भावनाओं का जैसा उदात्त, सजीव, महत्त्व-पूर्ण वर्णन इन राष्ट्रीय कवीश्वरों की वाणियों में प्राप्त होता है, वह सर्वथा अप्रतिम ही है। जिस प्रकार आधुनिक काल में प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं और उनके आदर्श कार्यों का अपार गुण-गान किया जाता है, उसी प्रकार उससे शतगुणित श्रेष्ठ ढंग से ब्रजभाषा के समर्थ लेखकों और कवियों ने हिंदू-जाति के संरक्षक महान् राष्ट्रीय वीर पुरुषों—जैसे शिवाजी, छत्रसाल और हम्मीर आदि—के चरित्रों और उनके आदर्शों का गान अपनी ओजमयी जीवनदायिनी रचना में प्रचुर परिमाण में किया है।

इस साहित्य के सिवा ब्रजभाषा में जो स्फुट छंद-रचना—मुक्तकों और पदों—का विशाल, गौरवमय विभाग है, वह तो सर्वथा प्रशंसनीय और संसार-साहित्य में उच्चातिउच्च सिंहासनारूढ़ होने के योग्य संपूर्ण गुणों से अलंकृत, सर्व-श्रेष्ठ कलामय है ही। इन स्फुट छंद-रचयिताओं ने संपूर्ण मनोरंजक और जीवनोपयोगी विषयों पर उत्कृष्ट रचना की है। इनमें सैकड़ों धुरंधर विद्वान्, प्रतिभाशाली उद्भट आचार्य और महाकवि हुए हैं। जिनमें सूर, हितहरिवंश, मीरा, कबीर, नंददास, नागरीदास, ध्रुवदास, बिहारी, मतिराम, दास, रहीम, केशव, सेनापति, हरिश्चंद्र आदि प्रधान हैं। यह यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री जाति के ६०० वर्ष के इतिहास को और उसकी भावनाओं को अपने अंक में लिए है। साथ ही यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि सैकड़ों माननीय कवीश्वरों ने ब्रजभाषा के काव्य-साहित्य को उन्नति के चरम शिखर पर प्रतिष्ठित करने में कुछ उठा नहीं रक्खा।

नाटक-साहित्य पर भी ब्रजभाषा के मनीषी लेखकों ने क़लम उठाई थी। इनमें भी हरिराम-कृत जानकीराम-चरित्र-नाटक, प्राणचंद्र-कृत रामायण-महानाटक और शंकरदत्त-कृत हरिवंश-हंस-नाटक आदि के सिवा राम-लीला और रासलीला-विषयक अनेक ग्रंथ-रत्न हैं, जिनमें यथेष्ट नाटकत्व है। ब्रजभाषा के नाटक-साहित्य ने चार सौ वर्षों से हिंदुस्थान के लोगों का मनोरंजन किया है, और उसके अंक में भारतेंदु हरिश्चंद्र-कृत चंद्रावली-नाटक-जैसा उत्कृष्ट अभिनय-योग्य ग्रंथ भी है, जो काव्य, चरित्र एवं मनोभावों के यथार्थ उतार-चढ़ाव के कलामय वर्णन की दृष्टि से अत्यंत उच्च कोटि का है। रुचि-भेद और समय की प्रगति से हम उन्हें भले ही न चाहें, पर उनकी निंदा करना हमारी अज्ञानता और तुच्छता ही होगी।

ब्रजभाषा के उच्च कोटि के साहित्य से संपन्न होने में उसके रीति-ग्रंथकार साहित्याचार्यों ने भी बड़ी सहायता पहुँचाई है। ये महानुभाव जहाँ एक ओर अपनी उत्कृष्ट

रचनाओं से ब्रजभाषा का भांडार भर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर रीति-ग्रंथ लिखकर दूसरों को उचित और श्रेयस्कर काव्य-पथ दिखला रहे थे। रीति-ग्रंथ पर सैकड़ों ही ऐसे उत्तमोत्तम ग्रंथ हैं। जैसे संस्कृत को छोड़ संसार की अन्य किसी भी भाषा में प्राप्त नहीं हो सकते। इनमें केशवदास-कृत 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया', चिंतामणि त्रिपाठी-कृत 'छंद-विचार', 'काव्य-विवेक', 'कवि-कुल-कल्पतरु' और 'काव्यप्रकाश', तोष-कृत 'सुधानिधि', मतिराम-कृत 'ललित ललाम', 'छंदसार-पिंगल' और 'रसराज', कुलपति मिश्र-कृत 'रस-रहस्य', सुखदेव मिश्र-कृत 'वृत्त-विचार', 'छंद-विचार' और 'रसार्णव', देव कवि-कृत 'सुजान-विनोद', 'भावविलास', 'भवानीविलास' और 'काव्य-रसायन', उदयनाथ कवींद्र-कृत 'रस-चंद्रोदय', श्रीपति-कृत 'काव्य-सरोज' और 'कवि-कल्पद्रुम', भिखारीदास-कृत 'छंदार्णव-पिंगल', 'काव्य-निर्णय' और 'शृंगार-निर्णय', कुमारमणि भट्ट-कृत 'रसिक-रसाल', दत्तकवि-कृत 'लालित्य-लता', रघुनाथ-कृत 'काव्य-कलाधर' और 'रसिकमोहन', दूलह कवि-कृत 'कविकुल-कंठाभरण', घासीराम-कृत 'काव्य-प्रकाश' और 'रसगंगाधर' की टीकाएँ, रूपसाहि-कृत 'रूपविलास', वैरीसाल-कृत 'भाषा-भरण', देवकीनंदन-कृत 'अवधूत-चरित्र', महाराज रामसिंह-कृत 'अलंकार-दर्पण' और 'रसनिवास', जसवंतसिंह-कृत 'शृंगार-शिरोमणि', करनकवि-कृत 'रस-कल्लोल', पद्माकर-कृत 'जगद्विनोद' और 'पद्माभरण', प्रतापसाहि-कृत 'व्यंग्यार्थ-कौमुदी' और 'काव्य-विलास' तथा बलवानसिंह-कृत 'चित्र-चंद्रिका', जसवंतसिंह-कृत 'भाषा-भूषण', सोमनाथ-कृत 'रस-पीयूष-निधि', रसलीन-कृत 'रस-प्रबोध' और दलपतिराय-वंशीधर-कृत 'अलंकार-रत्नाकर' आदि सैकड़ों उत्तमोत्तम ग्रंथ हैं। संस्कृत-साहित्य के धुरीण मर्मज्ञ, साहित्य-शास्त्र-निष्णात और उद्भट साहित्याचार्य पंडितराज जगन्नाथ ने अपने सुप्रसिद्ध रीति-ग्रंथ 'रस-गंगाधर' में अपने ग्रंथ को अन्यान्य ग्रंथों से विशेष दिखलाते हुए लिखा है—

"निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किञ्चित्;
कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धः।"

अर्थात्, "मैंने इस ग्रंथ में उदाहरणों के अनुरूप काव्य बनाकर रक्खा है, दूसरे से (उदाहरण-स्वरूप) कुछ भी नहीं लिया, क्योंकि कस्तूरी उत्पन्न करने की शक्ति रखनेवाला मृग क्या पुष्पों की सुगंध की तरफ़ मन भी लाता है? अपनी सुगंध से मस्त उसे क्या परवा है कि वह पुष्पों की गंध की याद करे?"

पंडितराज जगन्नाथ ने अपने स्वयंनिर्मित उदाहरण रखने पर जो यह गर्वोक्ति लिखी है, वह यथार्थ ही है। पर ब्रजभाषा-साहित्य के प्रायः संपूर्ण रीति-ग्रंथकारों ने अपने रीति-ग्रंथों में स्वयंरचित उदाहरण रक्खे हैं। यह विशेषता इतने बड़े परिमाण में और ऐसी उत्कृष्टता से केवल ब्रजभाषा-साहित्य में ही मिल सकती है। संसार के अन्य संपूर्ण

साहित्यों से इस विषय में ब्रजभाषा-साहित्य बहुत चढ़ा-बढ़ा है। इस विषय में उसकी अपनी विशेषता अप्रतिम है।

ब्रजभाषा में शृंगार-साहित्य

इस परिचय में हमने अब तक ब्रजभाषा-साहित्य के उस सबसे विशाल अंश का उल्लेख ही नहीं किया, जिससे उसका आधे से अधिक भाग भरा है। वह है ब्रजभाषा में शृंगार-रस-प्रधान साहित्य। यहाँ यह ध्यान रहे कि ब्रजभाषा के शृंगार-रस-प्रधान साहित्य को दो विशाल भागों में बाँट सकते हैं—(१) मानुषी शृंगार-प्रधान और (२) भक्ति-शृंगार-प्रधान। इन दोनो विभागों में सैकड़ों धुरंधर विद्वान् और उत्कृष्ट कलाकार कवीश्वर हुए हैं।

मानवीय शृंगार-रस-प्रधान काव्य-साहित्य के विषय में हम यहाँ इतना ही कह देना अलम् समझते हैं कि शृंगार आदि-रस और रसराज है। मनोवैज्ञानिक विवेचना-पद्धति से शृंगार ही सर्वश्रेष्ठ रस ठहरता है। शृंगार में स्थायी भाव रति (प्रेम) होने से इसमें कोमलतम सात्विक भावों का विशद वर्णन हो सकता है। सौंदर्य की चरम सीमा भी शृंगार में ही होती है। आभ्यंतर (हार्दिक) और प्राकृतिक सौंदर्य की परा काष्ठा का वर्णन केवल शृंगार में ही होता है। यही एक ऐसा रस है, जिसमें द्वैतभाव-निलय और तादात्म्य-भाव की पूर्णता परिलक्षित होती है। इस अशेष प्रकृति का विशाल प्रांगण ही शृंगार की क्रीड़ा-भूमि है । प्रकृति का अणु-अणु शृंगार-रस से ओत-प्रोत है। फिर कला में तो सौंदर्य का वर्णन होने से शृंगार सदैव ही रहेगा, क्योंकि शृंगार पर्याय है सौंदर्य का, और सौंदर्य का संबंध प्रेम से है। अतः सौंदर्य की उपलब्धि के लिये, प्रेम की दृढ़ता एवं विस्तीर्णता के लिये शृंगार-रस का वर्णन अनिवार्य है। इसी की विस्तीर्णता से उस आदर्श की प्राप्ति होना संभव है, जो मानवीय जीवन की सफलता के पूर्णत्व का द्योतक है। स्मरण रहे, कवि की दृष्टि में सौंदर्य होता है, और प्राकृतिक वस्तुओं में भी सौंदर्य होता है। दोनो एक दूसरे की ओर आकृष्ट होकर प्रेम की अविरल धारा बहाते हैं। कवि की प्रतिभा वस्तुओं के बहिरंग और अंतरंग को व्यक्त करती और उन्हें सजीव शब्द-चित्रों में चित्रित करती है। कवि अपने इस व्यक्तीकरण और चित्रण में, प्रायः प्रत्येक रस में, आपेक्षिक शृंगार और प्रेम की आर्द्रता का अनुभव करता है। यही आर्द्रता विश्व-सौंदर्य में निखार पैदा कर मानवीय हृदयों में विश्व-प्रेम का संचार करती है। बिना सौंदर्य और प्रेम के तो विश्व के अस्तित्व का अनुमान ही पूर्णरूपेण नहीं हो पाता। फिर यह 'रति'-भाव ही तो संपूर्ण प्रकृति के अंतस्तल में एक ही व्यापक सत्ता से विद्यमान है। इस विषय में इस भूमिका के आदि में ही प्रकाश डाला जा चुका है।

ब्रजभाषा के मानुषी शृंगार-पूर्ण काव्य की रचना करनेवाले कवियों की नीयत पर उँगली नहीं उठाई जा सकती। उन्होंने सौंदर्य और प्रेम को सहज ही सर्वोपरि समझा और उनके गुप्त रहस्यों को उद्घाटित करने का भरसक प्रयत्न किया है। उन श्रेष्ठ कला-

विदों ने अपनी कलात्मक रचनाओं में सौंदर्य और प्रेम के प्रभाव से मानव-जाति में ऐसा सौंदर्य एवं प्रेम उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है, जिससे सृष्टि तो क्या, स्वयं स्रष्टा भी उसके प्रति आकृष्ट हो जाय। सच तो यह है कि ब्रह्म की 'एकोऽहं बहुस्याम' की भावना के अंतस्तल में शृंगार का सागर लहरा रहा है। इसी से उक्त कवीश्वरों का उद्देश भी शृंगार-वर्णन द्वारा विशुद्ध दैवी प्रेम और निर्मल सौंदर्य का मानसिक अनुभूति-पूर्ण वर्णन रहा है। उद्देश का कारण भी सृष्टि और स्रष्टा के सौंदर्य और प्रेम का वह सुव्यवस्थित समुच्चय है, जो शृंगार का रूप धारण कर कवि के शृंगार-प्रिय हृदय में अनंत प्रतिबिंब डालता है, और उसे इस बात पर मजबूर करता है कि वह इस समूचे प्रतिबिंब को देखे, और समझे जाने योग्य चित्र में परिणत करके सर्वसाधारण के सम्मुख रख दे। इस उद्देश की पूर्ति व्रजभाषा के कवीश्वरों ने किस प्रकार की है, इसके उदाहरण में प्रायः संपूर्ण शृंगार-साहित्य पेश किया जा सकता है। उनके खींचे हुए चित्र आज भी संसार-साहित्य के चित्रागार में अप्रतिम हैं, और उनसे आज भी मौलिकता का स्फुरण होता है। उन्होंने जिस उच्च कोटि के रस-पूर्ण कलात्मक साहित्य की सृष्टि की है, वह सभी साहित्यिक युगों में अपना एक विशेष और प्रमुख स्थान रक्खेगा। उसके ऋण-भार से हिंदी का वर्तमान साहित्य दबा हुआ है। जो उसके प्रति घृणा फैलाने का दुष्कृत्य करते हैं, वे कृतघ्न हैं।

नायिका-भेद

व्रजभाषा के इस प्रकार के प्राचीन साहित्य में नायिका-भेद का बाहुल्य है। इस प्रकार के साहित्य का प्रारंभ आद्याचार्य भगवान् भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र' में, सूत्र-रूप में, हुआ है। फिर हम 'साहित्यदर्पण' में भी इसका विकसित रूप देखते हैं, और महाकवि भानुदत्त-विरचित 'रस-मंजरी' में तो हमें इसका अत्यंत विकसित रूप दिखाई देता है। व्रजभाषा-साहित्य में तो इस प्रकार की उत्कृष्टतम रचनाएँ हुई हैं। इसका अधिकांश अत्यंत उज्ज्वल और विशद कलामय है। यहाँ विस्तार-भय से उसका परिचय देने में असमर्थ हूँ। पर, स्मरण रहे, स्वकीया और उसके भेदोपभेदों का संपूर्ण वर्णन तो आदर्शवादी और धर्म-प्रेमियों को विमोहित करने की पूर्ण शक्ति से संपन्न है। फिर पिता के अधीन रहनेवाली कन्या और विवाहिता परकीया का वर्णन भी ऐसा है, जिसका प्रथम अर्थात् कन्या-रूपिणी अनूढ़ा का वर्णन तो पवित्रतामय है ही, पर ऊढ़ा का वर्णन भी प्रकृष्ट प्रेम से परिपूर्ण और कलात्मक है। विवाहिता परकीया एवं गणिका का वर्णन कई लोग भले ही अवर्णनीय समझें, पर संसार में जब तक परकीया नारियाँ और गणिकाएँ हैं, और जब तक उप-पति और वैसिक नायक हैं, तब तक निस्संदेह उनके वर्णन से साहित्य का संबंध रहेगा। इसमें विभिन्न मानवीय भावों और विचारों का जैसा मनोवैज्ञानिक, सच्चा, हृदयहारी वर्णन प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। कई ज्ञानलवदुर्विदग्ध सज्जन इसकी व्यर्थ ही निंदा करते पाए जाते हैं। हाँ, एक बात अवश्य है। वह यह कि कुछ असंयत

प्रकृति के निम्न श्रेणी के कवियों ने अधिकार-भेद से ऐसी भी रचनाएँ की हैं, जो असामयिक तथा कुत्सित हो गई हैं। पर जब तक संसार में निम्न श्रेणी के लोग हैं, तब तक निम्न श्रेणी के साहित्य का भी निर्माण होता रहेगा। आज भी 'घासलेटी' गंदे-से-गंदे साहित्य का निर्माण होता है। घृणित साहित्य और घृणित चित्रों का प्रचार आज भी अनेक प्रकार से होता ही है। यह अधिकार-भेद से संसार में होता ही है। इसके लिये किसी भाषा की निंदा व्यर्थ है। फिर व्रजभाषा में ऐसा साहित्य तो मुसलमानी बादशाहों और उनके फ़ारसी के साहित्य के कारण ही हुआ है। आज भी उच्छृंखलतामय पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव हिंदी के साहित्य पर पड़ रहा है। व्रजभाषा के नायिका-भेद के कलामय साहित्य के विषय में, 'रस-कलस' की भूमिका में, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है—

"मैं जब कला की कसौटी पर नायिका-भेद की कविता को कसता हूँ, तो उसको बावन तोले पाव रत्ती ठीक पाता हूँ। जितने लक्षण कविता के बतला आया हूँ, वे सब उसमें पाए जाते हैं। इस विषय में उसकी रचनाएँ संसार की किसी भी समुन्नत भाषा का सामना कर सकती हैं। इस विषय के हिंदी-कवियों ने जब जिस भाव का चित्रण किया है, उस समय उस भाव का उत्तम-से-उत्तम चित्र खींचकर सामने रख दिया है। आप चाहे जिस चित्र को उठा लीजिए, और कला के विचार से उस पर दृष्टि डालिए, तो आपको आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ेगा। भावुकता कविता की रीढ़ है। नायिका-भेद की कविताओं में वह कूट-कूटकर भरी है। यदि मनोभावों का स्वाभाविक विकास देखना चाहें, तो उसमें देखें। इस विषय के कवि का रस-पूर्ण हृदयांबुधि जब उत्ताल तरंग-माला-संकुल होता है, उस समय कैसे-कैसे भाव-मौक्तिक सहृदयों पर उत्सर्ग कर जाता है, इसका अनुभव उसी को होता है, जो कला की दृष्टि से उन मोतियों की परख करता है। जिनकी दृष्टि ऐसी नहीं, वे उन्हें भले ही घास या और कुछ समझ लें।"

(रस-कलस, भूमिका, पृष्ठ १२९)

व्रजभाषा में इस प्रकार की रचना कुछ अधिक है। इस ओर बड़े-बड़े समर्थ कवियों ने काव्य-रचना की है। इन कवीश्वरों में केशव, रहीम, बिहारी, सेनापति, मतिराम, घनानंद, दास और पद्माकर आदि सैकड़ों महान् कलाविद् हो गए हैं। इनके द्वारा अप्रतिम शृंगार-साहित्य की रचना हुई है, जिसका अधिकांश भाग उच्च कोटि की कला का परिचायक है, जिसमें मानवीय स्वभाव का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषणात्मक वर्णन सर्वथा हृदयहारी और उपादेय है।

भक्ति-शृंगार में भक्ति

इसके सिवा व्रजभाषा में भक्ति-प्रधान शृंगार-रस-पूर्ण काव्य का बाहुल्य है, जो पवित्र, रमणीय एवं बहुमूल्य है। इसकी रचना साहित्यिक दृष्टि से तो परमोत्कृष्ट है ही, पर भक्तिमयी होने के कारण परमोज्ज्वल एवं पवित्रकारिणी भी है। इसमें प्रेम-मूलक भक्ति को

ही प्रधानता दी गई है, जिसका प्रारंभ सन् ईस्वी के बहुत पहले ही आर्यों के भक्ति-शास्त्र में हो गया था। सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान्, राष्ट्र-सूत्रधार महामति लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने अपने विश्वप्रसिद्ध ग्रंथ 'गीता-रहस्य' में लिखा है—

"तात्त्विक दृष्टि से सच्चिदानंद ब्रह्मोपासना का समावेश भी प्रेम-मूलक भक्ति-मार्ग ही में किया जाना चाहिए। परंतु इस मार्ग में ध्यान करने के लिये जिस ब्रह्म-स्वरूप का स्वीकार किया जाता है, वह केवल अव्यक्त और बुद्धिगम्य अर्थात् ज्ञानगम्य होता है, और उसी को प्रधानता दी जाती है; इसलिये इस क्रिया को भक्ति-मार्ग न कहकर अध्यात्म-विचार, अव्यक्तोपासना या केवल उपासना अथवा ज्ञान-मार्ग कहते हैं। और, उपास्य ब्रह्म के सगुण रहने पर भी जब उसका अव्यक्त के बदले व्यक्त और विशेषतः मनुष्य-देहधारी रूप स्वीकृत किया जाता है, तब वही भक्ति-मार्ग कहलाता है। इस प्रकार यद्यपि मार्ग दो हैं, तथापि उन दोनो में एक ही परमेश्वर की प्राप्ति होती है, और अंत में एक ही-सी साम्य बुद्धि मन में उत्पन्न होती है।

"इन मार्गों की भिन्नता से अंतिम साध्य अथवा ध्येय में कुछ भिन्नता नहीं होती। इनमें से एक ज़ीने की पहली सीढ़ी बुद्धि है, तो दूसरे ज़ीने की पहली सीढ़ी श्रद्धा और प्रेम है। किसी भी मार्ग से जाओ, अंत में एक ही परमेश्वर का एक ही प्रकार का ज्ञान होता एवं एक ही-सी मुक्ति भी प्राप्त होती है। इसलिये दोनो मार्गों में यही सिद्धांत एक ही-सा स्थिर रहता है कि 'अनुभवात्मक ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता।' फिर यह व्यर्थ बखेड़ा करने से क्या लाभ कि ज्ञान-मार्ग श्रेष्ठ है या भक्ति-मार्ग! दोनो साधन प्रथमावस्था में अधिकार या योग्यता के अनुसार भिन्न हों, तथापि अंत में अर्थात् परिणाम-रूप में दोनो की योग्यता समान है, और गीता में इन दोनो को एक ही 'अध्यात्म' नाम दिया है।"

(गीता-रहस्य, पृष्ठ ४१३)

भक्ति में प्रेम

इस प्रेम-मूलक भक्ति-मार्ग के आर्य-शास्त्रकारों ने भक्ति-मार्ग की जैसी गंभीर और विशद विवेचना की है, वैसी तो विश्व-साहित्य में सर्वथा दुर्लभ ही है। बड़े-बड़े सम्मान्य, पूज्यपाद आचार्यों, मुनियों, महर्षियों और महात्मा विद्वानों ने इस भक्ति की गहनातिगहन समीक्षा करके इसके भिन्न-भिन्न मार्गों का उद्घाटन किया है, पर अंतिम ध्येय सबका प्रायः एक ही है। आर्यों का भक्ति-मार्ग और भागवत-धर्म अत्यंत प्राचीन है। इसमें वासुदेव श्रीकृष्ण की उपासना का प्राधान्य है। इस मार्ग को वैष्णव-मार्ग भी कहते हैं। इसमें 'वासुदेवःसर्वमिति' का भाव 'उपनिषदों' एवं 'वेदों' के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के भाव से कुछ भी न्यून नहीं। इसमें 'नमो भगवते वासुदेवाय' की गूँज है। श्रीकृष्ण-भक्ति-पूर्ण वैष्णव-धर्म या भागवत-धर्म अथवा भक्ति-मार्ग का प्रादुर्भाव अत्यंत प्राचीन काल में हो चुका था, एवं इस उदार धर्म में मनुष्य-मात्र को ईश्वर-भक्ति का समान अधिकार प्राप्त था।

भक्ति-शास्त्र की प्राचीनता

ग्वालियर-रियासत के भेलसा-शहर के पास, वेत्रवती नदी के निकट, 'वेस-नगर'-ग्राम में, 'खंभ बाबा' एक गरुड़ध्वज है। इसमें एक शिला-लेख है, जिसमें कहा गया है कि हेलिओडोरस-नामक एक हिंदू वैष्णव बने हुए यवन अर्थात् ग्रीक ने यह खंभ एवं इसी के सामने 'वासुदेव' का मंदिर निर्माण कराया था। यह हेलिओडोरस भेलसा के भगभद्र-नामक राजा के दरबार में तक्षशिला के एंटिआल्किडस-नामक ग्रीक राजा के एलची की हैसियत से रहता था। एंटिआल्किडस के सिक्कों से अब यह सिद्ध हो चुका है कि वह ईसा के पूर्व १४०वें वर्ष में राज्य करता था। इससे यह निर्विवाद सिद्ध है कि ईसा से दो शताब्दी पूर्व आर्य हिंदुओं में भक्ति-शास्त्र के भागवत-धर्म में वासुदेव-भक्ति प्रचलित थी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उदार वैष्णव-धर्म में यवन लोग दीक्षित होने लगे थे, एवं वे यवन भी वासुदेव के मंदिर बनवाने लगे थे।

इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध फ्रेंच-पाली-पंडित सेनार्ट ने भी भागवत-धर्म को बौद्ध-धर्म के पूर्व ही का सिद्ध किया है। उन्होंने अपने 'बौद्ध-धर्म के मूल'-नामक व्याख्यान में इसे भली भाँति सिद्ध करके अंत में अपना निम्न-लिखित मत दिया है—

"No one will claim to derive from Buddhism, Vishnuism ......Assuredly Buddhism is the borrower.......To sum up, if there had not previously existed a religion made up of the doctrines of Yoga, of Vishnuite legends, of devotion to Vishnu Krishna, worshipped under the title of Bhagwata, Buddhism would not have come to birth at all."

(The Indian Interpreter, Poona, 1910, pages 177-178.)

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डॉक्टर बूलर ने भी कहा है—

"The ancient Bhagwata, Satvata or Panch Ratra sect devoted to the worship of Narayana and his deitified teacher Krishna, Devakiputra, dates from a period long anterior to the rise of Jainas in the 8th century B. C."

(Indian Antiquary, Vol. XXIII (1894), Pages 248.)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भागवत-धर्म का प्रादुर्भाव जैन, बौद्ध, ईसाई एवं मुसलमानों के बहुत पूर्व हो चुका था। इसकी प्राचीनता के अनेक अकाट्य प्रमाण हैं। जिस प्रकार ज्ञान-मार्गी उपनिषदों में उपासना एवं ज्ञान की अनुपम मीमांसा है, उसी प्रकार भागवत-धर्म में भक्ति की अप्रतिम विवेचना है। भागवत-धर्म या भक्ति-मार्ग के प्रधान ग्रंथ गीता, भागवत एवं नारद-पांचरात्र हैं, और नारायणीयोपाख्यान (महाभारत) तथा शांडिल्य-सूत्र भी हैं। भक्ति-मार्ग के इन प्रधान ग्रंथों में सगुण (साकार) परमात्मा एवं स्पष्टतः वासुदेव श्रीकृष्ण

की भक्ति का विधान है। ध्यान रहे, गीता को भक्ति मान्य है, उपासना नहीं। और, इसी से गीता के सप्तम अध्याय से द्वादश अध्याय तक बार-बार भगवान् ने 'भक्त' एवं 'भक्ति' का ही प्रचुरता से प्रयोग किया है, एवं यह घोषित किया है कि—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ;
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।
(गीता अ० १२, श्लो० ५)

अर्थात्, "अव्यक्त में चित्त की एकाग्रता करनेवाले को बहुत कष्ट होते हैं, क्योंकि इस अव्यक्त-गति को प्राप्त करना देहेंद्रियधारी मनुष्यों के लिये स्वभावतः कष्टदायक है।"

साकार और निराकार ब्रह्मोपासना

स्मरण रहे, निराकार-निर्गुण की उपासना दुस्साध्य है। निराकार सगुण एवं साकार सगुण की भक्ति की जाती है। इसमें अपेक्षाकृत साकार सगुण ही श्रेष्ठ मार्ग है, क्योंकि रूप के विना—वस्तु के विना—गुणों की स्थिति मानना ही कष्ट-कल्पना है, और फिर दयामय, करुणा-सागर, भक्त-वत्सल एवं न्यायकर्ता आदि गुणों से युक्त निराकार सगुण एक प्रकार से उपासना के अंतर्गत आ जाता है। इसी कारण भागवत-धर्म या भक्ति-मार्ग ने परमात्मा के सगुण मानुषी रूप की ही भक्ति का विधान किया है। यहाँ यह ध्यान रहे कि ब्रह्म का आनंद-मय भाव ही प्रधान है, एवं इसी से ज्ञानी भी ब्रह्मानंद की इच्छा करते हैं। सो सच्चिदानंद भगवान् का सत् स्वरूप कर्तृत्व आदि से रहित, निर्गुण, निराकार है, एवं कर्तृत्व-सहित चेतन-स्वरूप दया, क्षमा आदि गुणों से युक्त, निराकार, सगुण है, तथा आनंदमय स्वरूप सगुण, साकार एवं बोधगम्य है। भक्ति-शास्त्र में इस सगुण, साकार, आनंदमय भाव की भक्ति करने का विधान है। इस शास्त्र के अनुसार इस नाम-रूपमय संसार के नाम-रूपमय मनुष्य के मन का साकार, सगुण की भक्ति के विना व्यापक में प्रवेश नहीं, एवं प्रेम और श्रद्धा जो भक्ति के प्रधान अंग हैं, सगुण, साकार में ही पूर्णत्व को प्राप्त होते हैं। मन की स्थिरता में ही ध्यान होता है, एवं चंचल मन साकार, सगुण के नाम-रूप में सहज ही लगता है। इसी से ध्यान-योग्य सगुण, साकार ब्रह्म की भक्ति ही भक्ति-शास्त्र को मान्य है। पर स्मरण रहे, ज्ञान तो निर्गुण का ही अपेक्षित है। इसके अभाव में भक्ति को जार-प्रेम के समान दूषित ही जानना चाहिए।

भक्ति में माधुर्य

भक्ति-रस माननेवाले आचार्यों ने भक्ति-रस के दो मुख्य भेद किए हैं—(१) गौण और (२) मुख्य। इनमें गौण रस में (१) हास्य, (२) अद्भुत, (३) वीर, (४) करुण, (५) रौद्र, (६) भयानक और (७) बीभत्स-नामक सात भेद हैं, और मुख्य भक्ति-रस में (१) शांत, (२) दास्य, (३) सख्य, (४) वात्सल्य और (५) मधुर-नामक पाँच भेद हैं। इनमें मधुर रस मुख्यतम है। यह भी (१) प्रणय, (२) मान, (३) स्नेह, (४) राग और (५) अनुराग

तथा (६) महाभाव तक उन्नति करता है। इस मधुर रस की भक्ति को ही भागवतकार ने 'आत्मनिवेदनकारिणी भक्ति' और महर्षि नारद ने 'कांतासक्ति' नाम दिया है। इसमें चराचर विश्व के उस एकमात्र स्वामी परमात्मा को पति मानकर पतिव्रता स्त्री के समान अपना सब कुछ प्रियतम पति के चरणों पर न्योछावर कर देने का भाव है। इसमें भगवान् से मिलन की तीव्रतम आकांक्षा के पश्चात् भगवान् से भावना-रूप से तदाकारता प्राप्त हो जाती है। यह भाव उस समय होता है, जब जीवात्मा को यह ज्ञान हो जाता है कि भोक्ता तो केवल भगवान् है, और संपूर्ण चराचर भोग्य है। जब तक अपने में भोग्य दृष्टि भली भाँति न हो जाय, तब तक भगवान् में 'भोक्ता' की दृष्टि असंभव है। इस माधुर्य-भक्ति में भक्त जीवात्मा का ध्येय 'संभोग' होता है। इस दशा में उसके रसिक हृदय में प्रेम-रस-पूर्ण जो मधुर तरंगें उठती हैं, उनमें संभोग की लालसा रहती है। एक क्षण के लिये भी द्वैत का भाव, विलग रहने का भाव उसे असह्य हो उठता है। उसके संपूर्ण विकारों में संभोग की लालसा एवं विप्रलंभ की कसक ओत-प्रोत रहती है। भागवत-धर्म की इसी भक्ति का प्रभाव ईसाई रहस्यवादियों, मुसलमान सूफ़ियों और निर्गुणवादी कबीर और दादूदयाल आदि भक्त संतों पर पड़ा है। पर उसका जैसा उत्कर्ष वैष्णव कवियों की वाणियों में है, वैसा संसार-साहित्य में कठिन खोज करने पर भी दुर्लभ है।

आर्य-साहित्य में श्रीराधाकृष्ण

इस प्रकार के आर्य-साहित्य में श्रीकृष्ण-गोपी-प्रेम की दिव्य धारा श्रीराधाकृष्ण के जल-तरंग-सम नित्य संबंध के वारि को लेकर प्रवाहित हुई है। मधुर रस की भक्ति का चूड़ांत आदर्श व्रजांगनाओं को ही आर्यों के भक्ति-शास्त्र ने घोषित किया है। इस गोपी-प्रेम का वर्णन श्रीमद्भागवत की रास-पंचाध्यायी में पाया जाता है। सुप्रसिद्ध समालोचक पूर्णचंद्र वसु महाशय अपने 'साहित्यचिंता'-नामक ग्रंथ में लिखते हैं—

"आर्यों के भक्ति-शास्त्र में एक और भी आदर्श प्रेम है। राधा उस प्रेम की प्रतिमा हैं, गोपियाँ उस प्रेम की सहचरी हैं। राधिका मधुरगोपिका-प्रेम का प्रकृष्ट निदर्शन है। पति-पत्नी का प्रेम जहाँ तक उन्नत हो सकता है, उस उन्नतावस्था को राधिका का प्रेम पहुँचकर कृष्ण-भक्ति से परिपूर्ण हो गया था। इसी से इस भक्ति का नाम प्रेम-भक्ति है। दांपत्य-प्रेम की परिपूर्णता को भगवदर्पण करना ही इसका उद्देश्य है, क्योंकि भगवान् ही प्राणवल्लभ हैं।...राधिका उसी प्रेम-भक्ति में उल्लासिनी और कृष्ण-लीलामयी हो गई थीं। उनके लिये कृष्ण का प्रेम ही संसार था, वही उनका सर्वस्व था। कृष्ण ही राधा के धन, सुख और चिंता थे, वह श्याम के प्रेम से ही मुग्ध थीं। श्याम के सहवास की अभिलाषिणी राधिका ने सब कुछ छोड़ दिया था।...कृष्णरूपमय वृंदावन में कृष्ण-कथामृत पान कर राधिका मुग्ध हुई थीं। विरह में राधिका की तन्मयता पूर्ण हुई थी। राधिका ने प्रकट कर दिया था कि कृष्ण-विरह असंभव है। राधा-कृष्ण सदा संसार में कदंब-मूल में विराजित रहेंगे।"

गोपी-प्रेम का काल-निर्णय

इस माधुर्य-भक्ति और गोपी-प्रेम का वर्णन अत्यंत प्राचीन है। कई लोग इसे आधुनिक सिद्ध करने का दुराग्रह करते देखे जाते हैं। परंतु कालिदास के कई शताब्दी पूर्व हुए महाकवि भास के नाटकों में और प्रसिद्ध बौद्ध नागार्जुन के ग्रंथों में गोपी-प्रेम का वर्णन होने से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि इस प्रकार की भक्ति का प्रादुर्भाव अत्यंत प्राचीन काल में हो चुका था, यहाँ तक कि भक्ति का चूड़ांत आदर्श व्रज-गोपियों की मधुर भक्ति को मानकर ही 'भक्ति-सूत्र' में 'यथा व्रजगोपिकानाम्' सूत्र आया है। इस गोपी-प्रेम में काव्य के उपयुक्त निर्मल सौंदर्य और उन्मुक्त, मधुर प्रेम का वर्णन करने की प्रचुर सामग्री सुलभ होने के कारण भावुक कवियों ने इसे अपनाया, और ऐसे साहित्य की सृष्टि की, जो सर्वथा अनुपम, अलौकिक और रमणीय है। व्रजभाषा का अधिकांश भाग, जिसमें गीति-काव्य की प्रधानता है, इसी प्रकार के उत्कृष्टतम साहित्य से परिपूर्ण होकर अपनी दिव्य ज्योति दर्शित कर रहा है।

इस प्रकार के भक्ति-शृंगार-पूर्ण साहित्य की रचना व्रजभाषा में उस समय हुई थी, जब भारत में मुसलमानों का आगमन हो गया था। इतिहास से स्पष्ट है कि वे जहाँ-जहाँ विजेता बने, वहाँ-वहाँ उन्होंने इस्लाम का भी प्रचार तथा प्रसार किया। यह वह समय था, जब हिंदुओं की संस्कृति पर विनाश के बादल छा गए थे। हम देखते हैं, इसी समय महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य, महाप्रभु श्रीहिताचार्य (हरिवंश), श्रीस्वामी हरिदासजी, श्री-मीराबाई, श्रीनरसी मेहता, श्रीसूरदास, श्रीहरिरामजी व्यास, श्रीध्रुवदास, श्रीभट्ट, श्री-नंददास और श्रीनागरीदास आदि सैकड़ों महानुभावों ने संपूर्ण उत्तरी भारत में भक्ति-तरंगिणी की प्रकांड धारा इतने वेग से प्रवाहित की कि संपूर्ण भारतवर्ष उसके अकथनीय आनंद में निमग्न हो गया! इन सबने श्रीकृष्ण की प्रेम-लक्षणा-पूर्ण भक्ति को प्रधानता दी है।

सखी-भाव

उक्त कांत-भाव की भक्ति के सिद्धांत को लेकर व्रज-भूमि के भक्तों ने 'सखी-भाव' की भक्ति का मोहन-मंत्र फूँका। आनंदमय ब्रह्म में प्रकृति-पुरुष की अनंत लीला की—रसमय ब्रह्म के अनंत रास की—द्रष्टा भक्त जीवात्माएँ असंग रहकर श्रीराधाकृष्ण का नित्य-विहार निहारती हैं, और युगल जोड़ी पर तन-मन वारती हैं। यह भक्ति कांत-भाव की भक्ति से भी कहीं श्रेष्ठ हो गई है। कांत-भाव की भक्ति में, निर्गुणवादी कबीर आदि के रहस्यवाद में और सूफ़ियों की प्रेम-भक्ति में भी सखी-भाव के समान त्रैलोक्यपावनी सरसता और मधुरता नहीं है। इस सखी-भाव की भक्ति का प्रभाव भी ख़ूब ही पड़ा। प्रकृति के अधीन जीवात्मा अस्वतंत्र होने से नारी है, और अनंत प्रकृति उसकी स्वामिनी है, एवं वह रसमय एक अद्वितीय पुरुष श्रीकृष्ण उसका स्वामी है। अनंत महाप्रकृति ही ब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति है, और उसकी सहचरी जीवात्मा ही उस सत् प्रधान

प्रकृति की सहायता से उसका अनंत ब्रह्म से अनंत रास देखने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। यह तभी हो सकता है, जब प्रिया-प्रियतम-रूप प्रकृति-पुरुष पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर उन्हीं के सुख में सुख मानकर जीवात्मा उनकी आनंदमयी क्रीड़ा का हृदय में अनुभव कर सके। इसी अवस्था के विषय में कबीर ने कहा है—

हम बासी वा देस के, जहँ बारह मास बिलास ;
प्रेम झरै, बिगसै कमल, तेज-पुंज-परकास ।

शृंगार-भक्ति के संप्रदाय

इस प्रकार की भक्ति करनेवालों ने भी किंचित् भेद से पृथक्-पृथक् संप्रदाय स्थापित किए, जिनमें सिद्धांतों और आचारों की विभिन्नता होने से भिन्न-भिन्न दार्शनिक स्कूलों और प्रकृतियों के लोगों को वे विशेष रूप से हृदय-ग्राही हुए। श्रीकृष्ण-भक्ति के सखी-भाव के संप्रदायों ने व्रजभाषा के काव्य-साहित्य में पवित्र भक्ति-शृंगार का अनुपम, अविरल स्रोत बहाया है। इन संप्रदायों के प्रवर्त्तक धर्माचार्यों (Prophets, पैग़ंबरों) ने अपने-अपने संप्रदायों (Religions, मज़हबों) के धर्म-ग्रंथ व्रजभाषा में शृंगार-प्रधान काव्यों में ही रचे हैं। इन महानुभावों की रचनाएँ वाणियाँ कहलाती हैं, एवं इनके संप्रदायों के अनुयायी सज्जन इन वाणियों को वेद-वाणी के समान पूज्य मानते एवं इन वाणियों के नित्य पाठ को पाप-निवारण का तथा श्रीकृष्ण-सान्निध्य-प्राप्ति का हेतु मानते हैं। इस भक्ति-शृंगार के साहित्य में अत्यंत उच्च कोटि के धार्मिक सिद्धांतों का रहस्य स्पष्टतया उद्घाटित हुआ है, और अनमोल शिक्षा दी गई है। इनकी यह रचना हमें मर्त्यलोक से उठाकर ब्रह्मलोक में पहुँचा देती एवं हमारे हृदय कृष्णानंद में निमग्न कर हमारी जीवन्मुक्तों-जैसी स्थिति कर देती है।

शृंगार-भक्ति का परिणाम

हिंदू-मुस्लिम-संघर्ष के कारण होनेवाले धार्मिक विप्लव के युग में इन संप्रदायों ने जो कार्य किया है, वह हिंदुत्व की दृष्टि से परम हितकारी सिद्ध हुआ है। इस प्रकार की भक्ति का बड़ा हितकर प्रभाव पड़ा, एवं हिंदू-जनता का अधिकांश इसी के कारण हिंदू-धर्म पर दृढ़ रहा। सच तो यह है कि इस भक्ति-शृंगार-पूर्ण साहित्य ने श्रीकृष्णोपासना की जो पतित-पावनी गंगा प्रवाहित की, उसने काल-प्रभाव के कारण मलीन हुए हिंदुओं के हृदयों को धोकर पवित्र कर दिया। केवल यही नहीं; मज़हबी कट्टरतावाले मुसलमान स्त्री-पुरुषों तक पर इस भक्ति-शृंगार का कैसा प्रभाव पड़ा था, इसके प्रमाण में रसखानि एवं ताज़ आदि की रचनाएँ दर्शनीय हैं। जब विधर्मी मुसलमान स्त्री-पुरुषों पर यह प्रभाव पड़ा, तब हिंदुओं पर जो प्रभाव पड़ा, उसका अनुमान सहज ही हो सकता है। इस भक्ति-शृंगार के साहित्य में जो उत्कृष्ट गीति-काव्य है, उसकी जोड़ विश्व-साहित्य में नहीं है।

व्रजभाषा के विरोधियों से दो शब्द

इस प्रकार सागरोपम, विशाल, उत्कृष्ट कला-संपन्न काव्य-साहित्य से परिपूर्ण गौरवमयी

व्रजभाषा की निंदा करना सिवा अंध-पक्षपात और घोर अज्ञान के और कहा ही क्या जा सकता है ? फिर व्रजभाषा एक बार संपूर्ण देश की—समूचे हिंदू-राष्ट्र की—देश-भाषा रह चुकी है। उसमें अर्थ-गांभीर्य-पूर्ण शब्द और कोमल-कांत पदावली है, सहज माधुर्य है, और ओज है, और है थोड़े में विशाल अर्थ को भर लेने की क्षमता। इसी के कारण वह इतना सम्मान प्राप्त कर चुकी है। उसका साहित्य-भांडार भी अपरिमित है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से उसमें आधुनिक काल की राष्ट्रीयता का राग भी अलापा जा रहा है। सहस्रों प्रतिभा-शाली कवीश्वरों द्वारा मँजकर वह भली भाँति परिमार्जित हो चुकी है। उसका स्वरूप पूर्णतः विकसित और सरसता-संपन्न है। वह श्रुति-मधुरता में अपना सानी नहीं रखती। अनुप्रास और यमक आदि उसमें स्वभावतः आते-जाते हैं। एक-एक पद हज़ार-हज़ार कवियों द्वारा माँजे जाने से अत्यंत सुडौल, सरस और मनोहर हो गया है। क्रिया-पदों में भी एक विलक्षण कोमलता और समास-रूप में कहने का गुण भरा पड़ा है। इसीलिये उसे काव्योपयोगी सर्वश्रेष्ठ भाषा कहते हैं, और इसी से फ़ारसी और उर्दू का मोह त्यागकर मुसलमान बादशाहों, नवाबों और कवियों ने इसे अपनाया था। इस भाषा के विषय में अधिक लिखना व्यर्थ ही है, क्योंकि विचारशील लोग इसके महत्त्व को भली भाँति जानते ही हैं, और जो नहीं जानते, वे उसे समझेंगे ही क्या ? हाँ, जो जानते हुए भी नहीं मानते, ऐसे दुराग्रही लोगों को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते।

व्रजभाषा में नवीन प्रगति

हर्ष का विषय है, भारतेंदु के बाद व्रजभाषा पर जो आपत्ति के बादल छा गए थे, वे अब धीरे-धीरे हट रहे हैं। भारतेंदु के बाद हम व्रजभाषा-साहित्य की रचना का ह्रास देखते हैं। यद्यपि उसमें पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राय देवीप्रसादजी 'पूर्ण', श्रीबालमुकुंद गुप्त, श्रीसत्यनारायण 'कविरत्न', पं० नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर', श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर', श्रीसनेहीजी, पं० रामचंद्र शुक्ल, श्रीवियोगी हरि आदि की उत्कृष्ट रचनाएँ हुईं अवश्य ; पर पत्रकारों एवं खड़ी बोली के प्रचारकों ने संघटित आंदोलन करके व्रजभाषा का विरोध किया, जिससे व्रजभाषा दब-सी गई थी। पर हिंदी-साहित्य में श्रीदुलारेलालजी भार्गव के सराहनीय प्रयत्न से, माधुरी के निकलते ही, व्रजभाषा की लता पुनः लहलहाने लगी। यद्यपि यह सत्य है कि अनेक विद्वान् व्रजभाषा-सेवियों ने इधर भी व्रजभाषा की श्री-वृद्धि करने में विशेष योग दिया है, पर श्रीदुलारेलालजी का प्रयत्न अनेक कारणों से इन सबकी अपेक्षा अधिक महत्त्व-पूर्ण रहा है। कारण, आप व्रजभाषा-साहित्य के प्रचारक तथा प्रकाशक ही नहीं, श्रेष्ठ कलाकार भी हैं। साथ ही आप खड़ी बोली के भी वैसे ही समर्थक हैं। अतएव आप हिंदी-माता के ऐसे सपूत हैं, जो प्राचीन और नवीन दोनो धाराओं के ज़बर्दस्त हिमायती और प्रचारक हैं। आप हिंदी के उन महानुभावों में से हैं, जो रात-दिन लगन के साथ राष्ट्र-भाषा हिंदी के उत्थान में सतत प्रयत्नशील रहते हैं।

३. दुलारे-दोहावली और उसके रचयिता

कविवर श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीदुलारेलालजी भार्गव का जन्म लखनऊ के सुप्रसिद्ध, सुप्रतिष्ठित, धनी भार्गव-कुल के यशस्वी श्रीमान् प्यारेलालजी के यहाँ हुआ था। आप उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपका लालन-पालन उर्दू के अजेय दुर्ग लखनऊ में हुआ। पर आपसे तो हिंदी की अक्षय सेवा का कार्य होना था। यद्यपि आपका परिवार उर्दू की ओर प्रधावित था, पर आपने अपने बालपन में ही अपना एक निश्चित मार्ग ग्रहण कर लिया था। आपकी माताजी तुलसी-कृत रामायण और पुराणों का नियमित रूप से पाठ किया करती थीं। इसलिये उनके हिंदी-प्रेम से प्रभावित होकर—इनको हिंदी के प्रति बाल्यकाल से ही अनुराग हो गया था, और आप उनकी अनुपस्थिति में उनके ग्रंथ चुपचाप पढ़ा करते थे। यह हिंदी-प्रेम अवस्थानुसार धीरे-धीरे बढ़ता गया। आप स्कूल और कॉलेज में अध्यापकों द्वारा उच्च कोटि के प्रतिभा-शाली विद्यार्थी समझे जाते थे। दर्जे में प्रथम आने के कारण आपको अनेक छात्रवृत्तियाँ (वज़ीफ़े) और स्वर्ण-पदक मिले। अँगरेज़ी में प्रांत-भर में प्रथम आने के कारण आपको नेस्फ़ील्ड*-स्कालरशिप भी मिला।

किशोरावस्था में पदार्पण करते ही आपका विवाह श्रीमान् फूलचंदजी भार्गव, एक्स्ट्रा-असिस्टेंट कमिश्नर की सुपुत्री श्रीमती गंगादेवी से हुआ। हमारे होनहार महाकवि को श्रीगंगादेवी के रूप में बाह्य और आभ्यंतर सौंदर्य-निधि की प्राप्ति हुई थी। कहते हैं, इस स्वर्गीया देवी को जैसा अपार सौंदर्य मिला था, वैसा ही हृदय-सौंदर्य भी। ऐसा मणि-कांचन-संयोग बिरले ही पुण्यवान्, भाग्यशाली मनुष्य को प्राप्त होता है। इन देवी में अनेक गुणों के साथ-साथ हिंदी के अनन्य प्रेम का सबसे बड़ा गुण था। इस सत्संग को पाकर दुलारेलालजी की हिंदी-हित की कामना-बेलि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी, और आपने अपने सोलहवें वर्ष में भार्गव-पत्रिका का संपादन-भार अपने कोमल कंधों पर ले लिया। आपके संपादन के पूर्व भार्गव-पत्रिका उर्दू में निकलती थी, पर आपके हाथ में आते ही वह राष्ट्र-भाषा हिंदी में निकलने लगी। उसमें हिंदी के अच्छे-अच्छे कवि और लेखक भी लेख देते थे।

दुर्दैव-वश दो ही तीन मास पति के साथ रहकर सौभाग्यवती श्रीगंगादेवी परलोक सिधारीं। इस आघात से दुलारेलालजी की जीवन-धारा में एक महत् परिवर्तन हो गया। नवलकिशोर-प्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष रायबहादुर श्रीमान् प्रयागनारायणजी भार्गव, जो आपके बाबा† होते थे और भार्गव-परिवार में सबसे ज्येष्ठ थे, आपसे बड़ा स्नेह रखते थे। वह

---

* युक्तप्रांत में कभी यह शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर थे। इनकी लिखी अँगरेज़ी व्याकरण प्रसिद्ध है।

† आपके परबाबा श्रीमान् फूलचंदजी के श्रीमान् नवलकिशोरजी सी० आई० ई० छोटे भाई थे। सो नवलकिशोरजी के पुत्र श्रीमान् प्रयागनारायणजी आपके बाबा होते थे।

अपने परिवार का इनको उज्ज्वलतम समझते थे। उनकी इच्छा थी कि आप आई० सी० एस्० पास करने के लिये विलायत जायँ, किंतु आपने सरकारी नौकरी करना पसंद नहीं किया, और अपनी प्राणेश्वरी पत्नी की इच्छा की पूर्ति के लिये हिंदी की महान् सेवा करने का बीड़ा उठाया। श्रीमती गंगादेवी अपना पांचभौतिक तन त्यागकर, पति की आत्मा में लीन होकर हिंदी का इतना भारी उपकार करेंगी, यह कौन जानता था? प्रेमी हृदय पर इस घटना का यह प्रभाव पड़ा कि दुलारेलालजी उसी समय से अविवाहित रहकर हिंदी-सेवा में निरत हैं। पत्नी के प्रति पति का ऐसा प्रगाढ़ प्रेम बीसवीं सदी में बहुत कम देखने में आता है। अगर वह आई० सी० एस्० होकर विलायत से लौटते, तो किसी ज़िले में पड़े दिन काटते, और हिंदी उनकी इस अमूल्य सेवा से वंचित ही रह जाती! अस्तु।

आपने अपनी सती-साध्वी धर्मपत्नी स्वर्गीया गंगादेवी के मरणोपरांत उनकी पुण्य-स्मृति में, वसंत-पंचमी के दिन, 'गंगा-पुस्तकमाला' प्रारंभ की। इस माला का पहला पुष्प था माला के संपादक, संचालक और स्वामी श्रीदुलारेलालजी-रचित 'हृदय-तरंग'-नामक ग्रंथ। इसे आपने अपनी स्वर्गीया प्रिय पत्नी को समर्पित किया। इसके बाद तो फिर 'गंगा-पुस्तकमाला' में राष्ट्र-भाषा हिंदी के गौरव को बढ़ानेवाली प्रत्येक विषय की श्रेष्ठ पुस्तकें निकलीं, जिनसे हिंदी का विशेष गौरव बढ़ा है। इन सब पुस्तकों को आपने स्वयं ही घोर परिश्रम से संपादित करके सुंदरता से प्रकाशित किया है। इसी के साथ-साथ हिंदी के इस यशस्वी सपूत ने अपने प्रिय बालसखा और चचा श्रीविष्णु-नारायणजी भार्गव के सहयोग से 'माधुरी' को निकालकर तथा उसका सुचारु रूप से संपादन करके हिंदी की गति-विधि ही बदल दी। उसी समय से हिंदी के मासिक साहित्य में अभूतपूर्व सुधार हुआ, जिसका भारी श्रेय श्रीदुलारेलालजी को है। 'माधुरी' को योग्य हाथों में सौंपने के बाद हिंदी के इस लाड़ले लाल ने 'सुधा'-पत्रिका को जन्म दिया। सुधा का संपादन भी आपने अपने ही हाथों में रक्खा, और आज तक आप ही के हाथों में है। सुधा हिंदी-संसार की प्रथम श्रेणी की पत्रिकाओं में अग्रगण्य रही है, और है। पहले यह मासिक थी, पर अब पाक्षिक है। पाक्षिक पत्रिका होते हुए भी यह मासिक के समान ही सज-धज से निकलती है। इसका संपादन उच्च कोटि का होता है। इन दोनो सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं के संपादन में आप जहाँ प्राचीन, प्रतिष्ठित साहित्य-सेवियों का सम्मान करते आए हैं, वहाँ नवीन, योग्य साहित्य-सेवियों को प्रबल प्रोत्साहन भी देते आए हैं। अनेक महिला लेखिकाओं को तो आप ही ने बढ़ावा दे-देकर उनसे लेख और ग्रंथ लिखवाए हैं। इस प्रकार आपने जहाँ स्वयं हिंदी की सेवा की है, वहाँ दूसरों से भी हिंदी-सेवा का कार्य लिया है। इनके समान हिंदी-हितैषिता बिरले लोगों में ही मिलेगी, फिर इतनी सेवा तो दुर्लभ है।

यद्यपि आपने खड़ी बोली में भी सुंदर, रसीली, भाव-पूर्ण कविता की है, पर आपकी कविता प्रधानतया ब्रजभाषा में मुक्तकों के रूप में ही देखी गई है। अब आपकी कविता के

विषय में कुछ लिखने के पूर्व मैं आपके संपादन तथा प्रकाशन-कार्य की प्रशंसा के विषय में कुछ अग्रगण्य विद्वानों की सम्मतियाँ उपस्थित करता हूँ—

सुप्रसिद्ध हिंदी-हितैषी डॉक्टर सर जॉर्ज ग्रियर्सन के० सी० एस्० आई०, पी-एच्० डी० महोदय—

"A new series of editions of Hindi classical works has lately been projected under the title of the Sukavi Madhuri Mala. The general editor of the series is Shri Dulareylal Bhargava well-known in Northern India as the Editor-in-Chief of the excellent Hindi Magazine, the Sudha. In this series he proposes to offer to the public critically prepared editions of the master pieces of Hindi Literature with careful and full commentaries.

The publisher and the general editor may be congratulated on beginning this series so auspiciously and it is to be hoped that the other works to be included in it will reach the same standard of scholarship."

संस्कृत के प्रकांड विद्वान् प्रोफ़ेसर रामप्रतापजी शास्त्री (नागपुर-विश्वविद्यालय के संस्कृत-हिंदी-प्राकृत-पाली-विभाग के अध्यक्ष)—

"The Ganga Pustak Mala Karyalaya is one of the best Publishing Institutions in India. It has played an important part in the evolution of modern Hindi Literature.

It has recently made tremendous progress under the efficient management of its young and energetic Proprietor Mr. Dulareylal Bhargava, an accomplished Poet, Prose-writer and the Editor of the best Hindi Monthly '*Sudha*'.

Mr. Dulareylal Bhargava has undoubtedly laid the Hindi-speaking world under a deep debt of gratitude by his selfless services and he will go down to posterity as the most successful Publisher. He has revolutionised Hindi printing and publishing in so short a time."

आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—बहुत-सी महत्त्व-पूर्ण और मनोरंजक पुस्तकें प्रकाशित करके गंगा-पुस्तकमाला के मालिक हिंदी-साहित्य की अभिवृद्धि में विशेष सहायक

हुए हैं। उनके पुस्तक-प्रकाशन का यह क्रम यदि इसी तरह चलता रहा, तो भविष्य में यह अभिवृद्धि अधिकाधिक वृद्धिंगत होती रहेगी।

सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक और कवि श्रीमान् 'मिश्रबंधु'—आपसे हिंदी का जैसा उपकार हुआ और हो रहा है, वैसा भारतेंदु हरिश्चंद्र के पीछे केवल इने-गिने महानुभावों द्वारा हो सका है। हम आशा करते हैं कि आगे चलकर आप हिंदी का और भी विशेष हित-साधन कर सकेंगे।

छायावाद के श्रेष्ठ कवि पं० सूर्यकांतजी त्रिपाठी 'निराला'—श्रीदुलारेलालजी भार्गव ने हिंदी की जो सेवा की है, उसका मूल्य निर्द्धारित करना मेरी शक्ति से बिलकुल बाहर है। 'माधुरी' और 'सुधा' में बराबर आप नवीन लेखकों को प्रोत्साहित करते रहे हैं, कितनी ही महिला-लेखिकाएँ तैयार कीं। यह क्रम हिंदी की किसी भी पत्रिका में नहीं रहा। इस प्रोत्साहन-कार्य में भार्गवजी का स्थान सबसे पहले है। लखनऊ-जैसे उर्दू के क़िले में इस तरह हिंदी का विशाल प्रासाद खड़ा कर देना कोई साधारण-सी बात नहीं थी। इसके लिये कितना परिश्रम तथा कितना अध्यवसाय चाहिए, यह मर्मज्ञ मनुष्य अच्छी ही तरह समझ लेंगे!

आप अनेक बार अनेक सभाओं और समाजों द्वारा निमंत्रित होकर सभापति का पद सुशोभित कर चुके हैं। युक्तप्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सप्तमाधिवेशन के सभापति के पद से आपने गुरुकुल कांगड़ी में जो भाषण किया था, वह महत्त्व-पूर्ण है। आपका सिंध-साहित्य-सम्मेलन का संभाषण भी हिंदी की हित-कामना से ओत-प्रोत एवं सुंदर हुआ है। ग्वालियर-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर अखिल भारतीय हिंदी-कवि-सम्मेलन ने आपकी कविता पर मुग्ध होकर उपस्थित कवियों में आपको प्रथम पुरस्कार दिया, जिसे आपने स्वयं न लेकर पं० पद्मकांतजी मालवीय को, जिनका नंबर दूसरा था, दिलवा दिया। प्रयाग में, द्विवेदी-मेला के समय, हास-परिहास के रंगमंच पर, अनेक कटाक्षों के उत्तर में आपकी मीठी हास्यमयी रचना ने सब उपस्थित सज्जनों को प्रसन्न किया था। उससे प्रकट होता है कि आप समय पर, तुरंत ही, मनोहर, चुटीली रचना करने में भी समर्थ हैं। हिंदू-विश्वविद्यालय, लखनऊ-विश्वविद्यालय आदि शिक्षा-संस्थाओं में भी कवि-सम्मेलन और वाद-विवादों में सभापति का भार वहन करते हुए आप विद्यार्थियों में हिंदी-प्रेम जाग्रत् करते रहे हैं। सप्तम संयुक्तप्रांतीय कवि-सम्मेलन के सभापति का पद भी आप मेरठ में सुशोभित कर चुके हैं। परसाल कलकत्ता पधारने पर वहाँ के साहित्य-सेवियों ने आपका अभिनंदन किया था। आप प्रकृति से पर्यटनशील हैं। काश्मीर, पंजाब, राजपूताना, सी० पी०, यू० पी०, बुंदेलखंड, मध्यभारत आदि आपका ख़ूब घूमा हुआ है। इससे आपका अनुभव बहुत बढ़ा है, जो एक सुकवि के लिये अपेक्षित है। आप मिलनसार और प्रेमी सज्जन हैं। आपके सामाजिक विचार अत्यंत उदार हैं। न तो आप प्राचीन भारतीय सभ्यता का सर्वथा नाश ही चाहते हैं, और न प्राचीनता की रूढ़ियों से

जकड़े रहकर प्रगतिशील समय से सर्वथा पीछे रह जाना ही पसंद करते हैं। तात्पर्य यह कि आप प्राचीन और नवीन का ऐसा समन्वय चाहते हैं, जो विश्व-कल्याणकारी हो। आप विभिन्न विचार-प्रणालियों को मानव-जीवन के विकास के लिये श्रेयस्कर समझकर उन सबका आदर करते हैं। आप जाति-पाँति में विश्वास नहीं रखते। सांप्रदायिकता से भी आप दूर रहते हैं। सुधा और गंगा-पुस्तकमाला के संपादन तथा प्रकाशन और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस तथा गंगा-ग्रंथागार के संचालन से समय बचाकर आप काव्य की रचना भी करते आए हैं। आप थोड़ा, किंतु अच्छा लिखने की नीति के क़ायल हैं।

दुलारे-दोहावली

कविवर पं० दुलारेलालजी भार्गव की इस श्रेष्ठ रचना 'दुलारे-दोहावली' में सब मिलाकर दो सौ आठ दोहे हैं। प्रारंभ में, प्रार्थना-शीर्षक में, आठ दोहे हैं—(१) गणेश-प्रार्थना, (२) राधा-कृष्ण-विनय, (३) रमापति-विनय, (४) मातृभूमि-वंदना, (५) कवि-कर्म, (६) वीर-रस के लिये कवि-प्रार्थना, (७) कला और (८) सरस्वती-वंदना। इसके बाद मुख्य ग्रंथ प्रारंभ होता है। इन दोहा-रत्नों को कवि ने यत्र-तत्र बिखेरकर रक्खा है।

दुलारे-दोहावली जिस रचना-प्रणाली पर लिखी गई है, उसके अनुसार यह साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से एक 'कोष' है, जिसमें २०८ दोहा-रत्न यत्र-तत्र अपने ही आपमें पूर्ण रहकर अपनी कमनीय कांति प्रदर्शित कर रहे हैं। साहित्य-शास्त्र में विवेचकों ने ऐसे 'पद्य-रत्न' को 'मुक्तक' कहा है। पद्यात्मक काव्य के प्रधानतया दो भेद हैं—(१) प्रबंध-काव्य और (२) मुक्तक-काव्य। प्रबंध-काव्य में कवि एक विस्तृत कथानक का आश्रय लेकर काव्य-रचना करने के लिये एक विशाल क्षेत्र चुन लेता है। उसे काव्य-सामग्री को एक विस्तृत क्षेत्र में यथास्थान भर देने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। उसका काम अभिधा से निकल जाता है, और कथानक की रोचकता के कारण उसमें मनोरमता रहती है। मुक्तककार का क्षेत्र बहुत ही संकीर्ण रहता है, उसी में उसको अपना संपूर्ण कथानक ध्वनि से, गंभीर अर्थ-पूर्ण शब्दों में, झलकाना पड़ता है। जहाँ प्रबंध-काव्य में छंद शृंखला-संबद्ध रहने के कारण आगे-पीछे के पद्यों का सहारा लेकर अपनी रक्षा कर सकते हैं, वहाँ मुक्तक-छंद को स्वतंत्र रूप से एकाकी रहकर अपना गौरव पूर्ण प्रबंध के सामने स्थापित करना पड़ता है। इसीलिये खंड काव्य, महाकाव्य आदि लिखने की अपेक्षा मुक्तक लिखना महत्त्व-पूर्ण है।

यह सत्य है कि मुक्तक की रचना काव्य-कला-कुशलता का चरम आदर्श है। एक पूरे प्रबंध (ग्रंथ) में कवि को विस्तृत कथानक का आश्रय लेकर रस-स्थापना का जो कार्य करना पड़ता है, वही कार्य एक छोटे-से मुक्तक में कर दिखाना विलक्षण काव्य-रचना-सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। कथानक का विस्तृत वर्णन न करके अर्थात् उसका आश्रय न लेकर एक छोटे-से छंद में इतना रस भर देना कि रसिक अगली-पिछली कथा का आश्रय लिए विना ही उसके आस्वादन से तृप्त हो जाय, सचमुच में असाधारण प्रतिभा का काम है। एक ही

स्वतंत्र पद्य में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपूर्ण रस का सागर लहराना, एक संपूर्ण आख्यायिका को थोड़े-से ध्वन्यात्मक शब्दों में भर दिखाना, कथन-शैली में एक निराला बाँकपन—एक निराला चमत्कार पैदा करना, उपमान-उपमेयों द्वारा समान दृश्य दिखलाकर भाव-साधर्म्य अथवा भाव-वैधर्म्य के आलंकारिक वेश को सजाना और सबके ऊपर देश-काल-पात्र के अनुकूल, स्वाभाविक प्रवाहमयी, आलंकारिक और मुहावरेदार, अर्थमयी, नपी-तुली, भावानुकूल, प्रांजल भाषा का सहज-सुकुमार प्रयोग करना सचमुच भारी क्षमता का काम है। मुक्तक की रचना प्रधानतया व्यंग्य-प्रधान उत्तम काव्य में होती है। मानव-स्वभाव का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करना और प्रकृति-पर्यवेक्षण एवं प्रकृति की अनुभूति के साथ गहन-से-गहन निगूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करना मुक्तकों की रचना का आदर्श होता है। पंडित पद्मसिंह शर्मा ने ठीक ही लिखा है—

"मुक्तक की रचना कविता-शक्ति की परा काष्ठा है। महाकाव्य, खंड काव्य या आख्यायिका आदि में यदि कथानक का क्रम अच्छी तरह बैठ गया, तो बात निभ जाती है। कथानक की मनोहरता पाठक का ध्यान कविता के गुण-दोष पर नहीं पड़ने देती। कथा-काव्य में हज़ार में दस-बीस पद्य भी मार्के के निकल आए, तो बहुत हैं। कथानक की सुंदर संघटना, वर्णन-शैली की मनोहरता और सरलता आदि के कारण कुल मिलाकर काव्य के अच्छेपन का प्रमाण-पत्र मिल जाता है। परंतु मुक्तक की रचना में कवि को गागर में सागर भरना पड़ता है। एक ही पद्य में अनेक भावों का समावेश और रस का सन्निवेश करके लोकोत्तर चमत्कार प्रकट करना पड़ता है।...इसके लिये कवि का सिद्ध सारस्वतीक और वश्यवाक् होना आवश्यक है। मुक्तक की रचना में कवि को रस की अक्षुण्णता पर पूरा ध्यान रखना पड़ता है, और यही कविता का प्राण है।"

(सतसई-संजीवन-भाष्य, भू० भा०)

यद्यपि यथार्थ में रसमय काव्य ही काव्य है, पर कुछ ऐसे काव्य भी लिखे जाते हैं, जो नीति एवं धर्म आदि के उपदेश को प्रधानतया प्रतिपादित करनेवाले होते हैं। इनमें बहुधा रस का अभाव रहता है, सुभाषित-मात्र इनमें रहता है, जिसमें केवल वाग्वैदग्ध्य का चमत्कार होता है। मुक्तक भी इस पर बहुतायत से लिखे जाते हैं। ऐसे सूक्ति-प्रधान मुक्तकों की रचना नीति और धर्म आदि के उपदेश देने के उद्देश्य से की जाती है। इनमें भी कथन-शैली का बाँकपन और शब्द-चमत्कार का समावेश होना आवश्यक होता है, क्योंकि इनके बिना सूक्ति-प्रधान उत्तम मुक्तक नहीं रचे जा सकते। रस को छोड़कर अन्य काव्यांगों का समुचित समावेश इनमें अत्यंत संक्षेप में करना पड़ता है।

काव्य की अभिव्यक्ति सर्वोत्कृष्टतया व्यंग्य में होती है, इसीलिये अनेक साहित्य-रीति-ग्रंथकार—महामति विवेचकों ने व्यंग्य-प्रधान काव्य को श्रेष्ठता दी है। बहुत-से आचार्य और आगे बढ़ गए हैं; रस की अभिव्यक्ति के लिये भी सबल होने के कारण ध्वनिमय व्यंग्य को काव्य की आत्मा घोषित किया है। इस प्रकार की रस-ध्वनि-पूर्ण काव्य-रचना करनेवाले ही

महाकवि कहलाते हैं। यह व्यंग्य काव्य में ध्वनि से उसी प्रकार झलकता है, जिस प्रकार अंगना का लावण्य उसके सुंदर शरीर से। धुरंधर काव्य-मर्मज्ञ आनंदवर्द्धनाचार्य लिखते हैं—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव
वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्;
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं
विभाति लावण्यमिवांगनासु। (ध्वन्यालोक १।४)

"महाकवियों की वाणी में वाच्य अर्थ के अतिरिक्त प्रतीयमान अर्थ एक ऐसी चमत्कारक वस्तु है, जो अंगना के अंग में हस्तपादादि प्रसिद्ध अवयवों के अतिरिक्त लावण्य की तरह चमकती है।"

दुलारे-दोहावली के मुक्तक

इस प्रकार के मुक्तक और वे भी रस, ध्वनि और भावानुगामिनी उत्कृष्ट काव्य-भाषा से युक्त, दुलारे-दोहावली में, यत्र-तत्र बिखरे हुए देख पड़ते हैं। यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि दोहावली में आदि से अंत तक कोई क्रम नहीं, क्योंकि प्रत्येक पद्य मुक्तक होने से स्वतंत्र है, फिर भी विषय-विचार की दृष्टि से दुलारे-दोहावली में क्रम है, जो ध्यान से देखने पर मालूम हो जायगा। दोहावली के ये दोहे भाषा और भाव की दृष्टि से परमोत्कृष्ट हुए हैं। 'सूक्ति' के दोहे भी बड़े चुटीले और अनूठे काव्य के उदाहरण हैं। उनमें भी कथन-शैली के तीखेपन के साथ मधुर कसक-पूर्ण बाँकपन पाया जाता है। इस दोहावली को सूक्ष्म तथा गहन दृष्टि से देखने पर गागर में सागर दिखलाई पड़ने लगता है। इतने विषयों को, इतने थोड़े में, इतने अनूठे ढंग से, सरल काव्य में लिखना और उसमें भी ऐसा कुछ लिख जाना, जो बड़े-बड़े विद्वान् व्यक्ति भी न लिख सके थे, सचमुच असाधारण प्रतिभा का काम है। हमारे दोहावलीकार ने ऐसा ही किया है।

गागर में सागर

इस एक ही छोटे काव्य-कोष में इतना भर देना यह सिद्ध करता है कि इसके पूर्व रचयिता ने बहुत कुछ देखा-भाला है, और उसका हृदय असंख्य अनुभूतियों का आगार बन चुका है। इसमें कवि ने जिस विषय को उठाया है, उसका बड़ा ही सच्चा, अनुभूत, हृदयग्राही और भावमय चित्र, अत्यंत मनोरम, भावानुगामिनी भाषा में, उपस्थित कर दिया है। सजीव कल्पना-मूर्तियों द्वारा शाश्वत प्रकृति के अंतरंग और बहिरंग का रमणीय वर्णन साहित्य-शास्त्रानुमोदित उत्कृष्ट कवि-कौशल से करने में दुलारे-दोहावलीकार को अभिनंदनीय सफलता मिली है। विशुद्ध भारतीय भावनाओं को मानव-प्रकृति को ग्राह्य, विशद कलात्मक रीति से उपस्थित करने में कवि का कौशल देखते ही बन पड़ता है। इस काव्य-कोष में ऐसे-ऐसे अनमोल मुक्तक-रत्न हैं, जिनका मूल्य आँकना बड़े-बड़े जौहरियों का ही काम है। इसमें कवि का प्रकृति-पर्यवेक्षण और विशाल अनुभव स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

दोहावली में बहुदर्शिता

स्मरण रहे, केवल पद्य लिखने लगना ही कविता करना नहीं है। कवि का संसार-ज्ञान बड़ा विस्तृत होता है। वह मनुष्य-स्वभाव का पारखी होता है। उसकी दृष्टि के सम्मुख प्रकृति का रहस्य खुल जाता है। उसकी कल्पना मर्त्य से स्वर्ग और स्वर्ग से मर्त्य तक अबाध गति से विचरण करती है। दुलारे-दोहावली के प्रणेता की अनेक कलाओं और शास्त्रों की जानकारी हमें आश्चर्य-चकित करती है।

इस दोहावली में व्याधिन का मृग को शर से मारना और जाल में रखकर ले जाना, चंद्रमा के सम्मुख कमल का संकुचित हो जाना, अड़ियल घोड़े का लगाम खींचते रहने एवं चाबुक चलाते रहने पर भी एक ही स्थान पर अड़े रहना, चंद्रोदय से कुमुदिनी का विकसित होना, चरसे के पानी का रुक-रुककर जल देना, झरने का अविश्रांत प्रपात, पराजित नृपति का भागना और दुर्ग में पनाह लेना, सूर्य-किरणों से समुद्र-जल का भाप-रूप होकर बादल बनना एवं उससे वर्षा होना, आकाश से तारों का टूटकर गिरना और अमंगल की सूचना देना, बंसी डालकर मछली को फँसाना, कूची चलाकर पट पर चित्र चित्रित करना, चकमक पर लोहे की चोट देकर सूत में आग झाड़ना, बरसते हुए बादल में बिजली का कौंदना, वायुयान का बरसते हुए बादल को चीरकर ऊपर चढ़ जाना, स्वास्थ्य का संपूर्ण सुखों का एकमात्र साधन होना, आत्मज्ञान से 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के भाव की प्राप्ति होने पर शाश्वत आनंद, चुगलखोरों की काली करतूत, झंझावात से उपवन का नाश, चवा से तरु का उखड़ जाना, खस की टट्टी से लुओं का शीतल-मंद-सुगंध होना, रजनी-गंधा का रजनी ही में सुबास देना, अंबर-बेलि से तरु का शुष्क होना, छटके में मछलियों का कूदना और फँसना, अंध-बिंदु के सामने पड़ने पर कोई भी वस्तु का न दिखलाई देना, हीरे की बहुमूल्यता, उज्ज्वलता और कठोरता, बिना तार के तार से समाचारों का चुपचाप जाना और आना, मूर्च्छित स्वर्ण का कुरंड-कण से आबदार बनना, रहँट द्वारा सिंचाई होना, पुर की रक्षा के लिये प्राचीर का बनना, भूकंप से सुदृढ़ गढ़ का ढह जाना, आयात पर तट-कर लगाकर देश की आर्थिक दशा को सुधारना, ज्वार से सिंधु में बाढ़ आना, शत्रु के प्रबल आक्रमण से भय-विह्वल हो नारियों का व्रत-रक्षणार्थ जौहर करना, छली ठगों का मूर्च्छित कर छलना, डाल पर झूला डालकर पटली पर झूलना, तंत्री का रुचिर राग रागना, आतिशी शीशी का आँच खाकर भी यथापूर्व रहना, कर्ण का दान, भामाशाह का त्याग, त्रिशंकु की गति, हरिश्चंद्र की सत्यप्रियता, संध्या-समय पथिक का भठियारी के यहाँ विश्राम, संपूर्ण नगर के दीपकों का बिजली-से जल उठना, ब्रह्म की खोज करने में स्वयं ब्रह्म होकर अहंकार खो बैठना, आत्मसमर्पण करनेवालों का समर्पण-केतु दिखलाना, जल-अलि का घूम घूमकर चपलता से एक ही ओर तैरना आदि-आदि अनेक वर्णन हैं, जिनसे कवि के व्यापक ज्ञान और पांडित्य का परिचय प्राप्त होता है।

दोहावली में काव्यांग

दुलारे-दोहावली में अनेक काव्यांगों के बहुत ही प्रकृष्ट और विशुद्ध उदाहरण पाए जाते हैं। यहाँ कुछ का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। निम्न-लिखित उदाहरणों से कवि का काव्य-रीति का मार्मिक ज्ञाता होना सूचित होता है। निम्न-लिखित उद्धरणों में लाक्षणिक पद्धति का मनोमोहक चमत्कार दर्शनीय है—

पूर्वानुरागांतर्गत अनूढ़ा की अभिलाषा-दशा—

गुरुजन-लाज-लगाम, सखि-सिख-साँटो हू निदरि—
टरत न प्रिय मुख-ठाम, अरत अरीले दृग-तुरग।

कलहांतरिता—

नाह-नेह-नभ तें अली, टारि रोस कौ राहु—
पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय, तिय-कुमुदिनि बिकसाहु।

वय-संधि—

नख-सिख-देस लग्यौ चढ़न इत जोबन-नरनाह,
पदन-चपलई उत लई जनु दृग-दुरग पनाह।

विरह-निवेदन—

झपकि रही, धीरैं चलौ; लेहु दूरि तें प्यार,
पीर-दब्यौ दरकै न उर चुंबन ही के भार।

प्रवत्स्यत्पतिका—

तन-उपबन सहिहै कहा बिछुरन-झंझाबात,
उर्‍यौ जात उर-तरु जबै चलिबे ही की बात?

आगतपतिका—

मुकुता सुख-अँसुआ भए, भयौ ताग उर-प्यार;
मन-सूई तें गूँथि जनु देति हार उपहार।

रूपकातिशयोक्ति-अलंकार—

खिलैं अनेक सुभग सुमन, सुमन न नेक पत्याय;
अमल कमल ही पै मधुप फिरि-फिरि फिरि मँडराय।

व्यतिरेक—

दमकति दरपन-दरप दरि दीपसिखा-दुति देह;
वह दृढ़ इकदिसि दिपत, यह मृदु दस दिसनि स-नेह।
मैन-ऐन तव नैन, सोहैं सरसिज-से सुभग;
ए बिकसित दिन-रैन, वे बिकसित बस दिबस हीं!
तेज तुरंग तुरंग तैं इतौ कि दुसतर माप;
वह मारैं आगे बढ़ै, यह भागें द्रुत आप।

असंगति —

लरैं नैन, पलकैं गिरैं, चित तरपैं दिन-रात,
उठै सूल उर, प्रीति-पुर अजब अनोखी बात।

उत्प्रेक्षा—

कढ़ि सर तें द्रुत दै गई दृगनि देह-दुति चौंध;
बरसत बादर-बीच जनु गई बीजुरी कौंध।

दोहावली में अलंकार

दुलारे-दोहावली में वैसे तो अनेक अलंकारों का वर्णन है, और ख़ूब है; परंतु कविवर दुलारेलाल का पूर्ण कौशल रूपक-अलंकार के उत्कृष्ट वर्णनों में परिलक्षित होता है। स्मरण रहे, उपमा की अपेक्षा रूपक का निर्वाह कठिन होता है। इसमें भी परंपरित सावयव सम अभेद रूपक लिखना तो पूर्ण कवित्व-सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत दोहावली में कविवर ने सावयव सम अभेद रूपक-अलंकार की पूर्ण छटा अनेक दोहों में बड़े ही कौशल से छहराई है। किसी विषय को उठाकर, उसके उचित उपकरणों को सजाकर वैसे ही भाव-साधर्म्य का दूसरा सावयव दृश्य उपस्थित कर उनमें आदि से अंत तक सम अभेद रूपक का निर्वाह कर ले जाना विलक्षण प्रतिभा, प्रबल कल्पना और व्यापक ज्ञान के साथ-साथ सरस अनुभूति का परिचायक है। अब तक रूपकों की अनुपम छटा के लिये बिहारी-सतसई की ही सर्वापेक्षा अधिक प्रसिद्धि और सम्मान है। पर दुलारे-दोहावली के उत्कृष्ट रूपकों की परंपरित सावयव सम अभेद रहने की काव्य-चातुरी देखकर अब विवश होकर यही कहना पड़ता है कि उत्कृष्ट रूपकों की दृष्टि से दुलारे-दोहावली के दोहे बिहारी-सतसई के दोहों का सफलता से मुक़ाबला करते हैं। ऐसे दो-चार रूपक यहाँ देखिए—

हृदय कूप, मन रहँट, स्मृति-माल माल, रस राग,
बिरह बृषभ, बरहा नयन क्यों न सिंचै स्मर-बाग?
जोबन-बन बिहरत नयन-सर सों मन-मृग मारि—
बाँधति ब्याधिनि केसिनी केसन-पास सँवारि।
नाह-नेह-नभ तें अली, टारि रोस कौ राहु—
पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय, तिय-कुमुदिनि बिकसाहु।
चित-चकमक पै चोट दै, चितवन-लोह चलाइ—
हित-आगी हिय-सूत मैं ललना गई लगाइ।
रही अछूतोद्धार-नद छुआछूत-तिय डूबि;
सास्त्रन कौ तिनकौ गहति क्रांति-भँवर सौं ऊबि।
यौरप-दुःशासन निठुर खींचत लखि निधि-चीर—
जन्मभूमि-कृष्णा करी 'मोहन' अभय-शरीर।

दंपति-हित-डोरी डरी, लटकति चल चित-डार,
चार चखन-पटरी परी, झुँकनि झूलत मार।
चपल चखन-चर चार मिलि, नवल-बयस-थल आय—
हित-झँपान लै चित-पथिक स्मर-गिरि देत चढ़ाय।

भाषा

दुलारे-दोहावली की भाषा प्रौढ़ साहित्यिक ब्रजभाषा है। स्मरण रहे, प्राचीन काल ही से साहित्यिक ब्रजभाषा में अत्यंत प्रचलित फ़ारसी, बुंदेलखंडी, अवधी और संस्कृत के तत्सम शब्दों का थोड़ा-बहुत प्रयोग होता रहा है। ब्रजभाषा के किसी भी कवि की भाषा का बारीकी से अध्ययन करने पर उपर्युक्त बात का पता सहज ही चल सकता है। कुछ प्राचीन कवियों ने तो अनुप्रास और यमक के लिये भाषा को इतना तोड़ा-मरोड़ा है कि शब्दों के रूप ही विकृत हो गए हैं। यद्यपि दोहावलीकार ब्रजभाषा के निर्माता सूर, बिहारी आदि कवीश्वरों द्वारा अपनाए गए बुंदेलखंडी, अवधी और फ़ारसी के अत्यंत प्रचलित शब्दों का बहिष्कार करना अनुचित मानते हैं, पर उन्होंने प्रायः ब्रजभाषा के विशुद्ध रूप को ही अपनी रचना में अपनाया है। दूसरी प्रांतीय हिंदी-बोलियों अथवा फ़ारसी के शब्दों का आपने इने-गिने दस-पाँच स्थलों पर ही, जहाँ उचित समझा है, प्रयोग किया है। आपने अत्यंत प्रचलित अँगरेज़ी शब्दों का भी दो-चार दोहों में प्रयोग किया है; परंतु ऐसे स्थलों में प्रयुक्त अँगरेज़ी शब्द वे हैं, जिनके पर्यायवाची शब्द हिंदी में नहीं मिलते, और जिन्हें आज जनता भली भाँति समझती है। जैसे—

सासन-कृषि तैं दूर दीन प्रजा-पंछी रहैं,
सासक-कृषकन कूर आर्डिनेंस-चंचो रचो।

इसमें आर्डिनेंस का प्रयोग ऐसा ही हुआ है। एक और भी उदाहरण दर्शनीय है, जिसमें प्रचलित अँगरेज़ी शब्दों के प्रयोग द्वारा कविवर श्रीदुलारेलाल ने 'भाषा-समक'-अलंकार रक्खा है—

सत-इसटिक जग-फील्ड लै जीवन-हाकी खेलि;
वा अनंत के गोल मैं आतम-बालहिं मेलि।

दोहावली की भाषा में बोलचाल की स्वाभाविकता और ज़बाँदानी का चमत्कार सर्वत्र दर्शनीय है। पद-मैत्री का भी सौष्ठव है। अनुप्रास, श्लेष और यमक का बड़ा ही औचित्य-पूर्ण, रसानुकूल, सुंदर प्रयोग किया गया है। माधुर्य, प्रसाद और ओज की अनेक दोहों में निराली छटा आ गई है। यहाँ स्थानाभाव के कारण भाषा-सौंदर्य के विषय में अधिक न लिखकर मैं दोहावली के शब्दालंकारों की छटा की कुछ झलक दिखलाता हूँ—

अनुप्रास—

संतत सहज सुभाय सौं सुजन सबै सनमानि—
सुधा-सरस सींचत स्रवन सनी-सनेह सुबानि।

कियौ कोप चित-चोप सौं, आई आनन ओप,
भई लोप पै मिलत चख, लियौ हियौ हित छोप।
स्याम-सुरँग-रँग-करन-कर रग-रग रँगत उदोत;
जग-मग जगमग जगमगत, डग डगमग नहिं होत।
गुंजनिकेतन - गुंज - जुत हुतौ कितौ मनरंज!
लुंज - पुंज सो कुंज लखि क्यों न होय मन रंज?
नंद - नंद सुख - कंद कौ मंद हँसत मुख - चंद,
नसत द्वंद - छलछंद - तम, जगत जगत आनंद।

यमक—

बस न हमारौ, करहु बस, बस न लेहु प्रिय लाज;
बसन देहु, ब्रज मैं हमैं बसन देहु ब्रजराज!
बार बित्यौ लखि, बार झुकि बार बिरह के बार—
बार-बार सोचति—'कितै कीन्हीं बार लबार?'
खरी साँकरी हित-गली, बिरह - काँकरी छाइ—
अगम करी तापै अली, लाज - करी बिठराइ।
हृदय-सून तैं असत - तम हरौ, करौ जौ सून,
सून-भरन के हित झपटि झट आवेगौ सून।

श्लेष—

बिषय-बात मन-नाव कौं भव-नद देति बहाइ;
पकरु नाव - पतवार दृढ़, चट लगिहै तट आइ।
मन-कानन मैं धँसि कुटिल, काननचारी नैन—
मारत मति-मृगि मृदुल, पै पोसत मृगपति - मैन!
सखी, दूरि राखौ सबै दूती-करम-कलाप;
मन-कानन उपजत-उठत प्यार आप - ही - आप।
देस कला नव बिसतरत, हरत ताप चहुँ ओर,
करत प्रफुल्ल प्रफुल्लचँद चतुरन - चित्त - चकोर।

दोहावली की भाषा परिमार्जित, व्याकरण-विशुद्ध और शब्दालंकारों से सुसज्जित है। उसमें असमर्थ, विकृत तथा अप्रयुक्त शब्द नहीं हैं, एवं उसकी सबसे बड़ी विशेषता है समास में कहने की प्रणाली। अत्यंत संक्षेप में विशाल अर्थ भरने में दोहावलीकार ने प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है। इसे देखकर रहीम के इस दोहे का स्मरण हो आता है—

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं,
ज्यों 'रहीम' नट कुंडली सिमिटि, कूदि कढ़ि जाहिं।

दोहावली की विशेषता और उसका अंतरंग

दुलारे-दोहावली में हम ब्रजभाषा की कोमल-कांत पदावली में—भावानुगामिनी तथा काव्यगुण-संपन्न भाषा में शृंगार और करुण-रस के कोमलतम मनोभावों की मंजुल, सजीव कल्पना-मूर्तियाँ, वीर-रस की ओजस्विनी उक्तियाँ, देश-प्रेम का छलकता हुआ प्याला, शांत-रस की सुधा-धारा और राष्ट्रीयता एवं नीति की चुटीली, ज़ोरदार सूक्तियाँ पाते हैं। इन सबका वर्णन कवि ने उत्कृष्टतया किया है। यद्यपि दोहावली के दोहों में अनेक विषयों एवं रसों का वर्णन है, पर प्रधानता शृंगार-रस की है। शृंगार-रस की रचना में भी संयत प्रकृति के सुकवि ने निर्लज्जता-पूर्ण, उद्वेग-जनक वर्णन को छुआ तक नहीं। दुलारे-दोहावली के शृंगार-वर्णन के दोहे विशुद्ध रति-भाव के द्योतक हैं, जिनमें अनंग काम अशरीरी होकर ही आया है। यथार्थ में कविवर ने भावधारा-प्रधान साहित्य के मुख्य भाव प्रेम की अभिव्यंजना और अलौकिक सौंदर्य की ही अवतारणा अपने शृंगार-रस के दोहों में की है। आपने लौकिक अर्थात् नर-नारी-संबंधी और अलौकिक अर्थात् परमात्मा-संबंधी द्विविध शृंगार के संयोग-वियोगात्मक वर्णनों में प्रेम की प्रधानता रखकर अनुभावों का कलामय चमत्कार दिखलाया है। यही एक ऐसे कवि हैं, जो शृंगार-रस के अनेक सफल चित्र उपस्थित करने में उद्वेग को सर्वथा बचा गए हैं। इसके लिये कवि की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। आप कुलटा और गणिका तक के भावमय, काल्पनिक शब्द-चित्रों में उद्वेग का अभाव ही देखेंगे। ऐसे दो उदाहरण यहाँ देखिए—

कुलटा—

लंक लचाइ, नचाइ दृग, पग उँचाइ, भरि चाइ—
सिर धरि गागरि डगर महँ नागरि नाचति जाइ।

गणिका—

मृदु हँसि, पुनि-पुनि बोलि प्रिय, रखि रूखी रुख बाम—
नेह उपै, पालै, हरै करि बिधि-हरि-हर-काम।

दोहावलीकार ने रस-व्यंजना का वैभव अनुभावों और हावों की सरस योजना में प्रदर्शित किया है। कुछ उदाहरण लीजिए—

जोबन-बन बिहरत नयन-सर सों मन-मृग मारि—
बाँधति ब्याधिनि केसिनी केसन-पास सँवारि।
झपटि लरत, गिरि-गिरि परत, पुनि उठि-उठि गिरि जात ;
चख-भट निधरक हित-समर करत परसपर घात।
ऊँच-जनम नरवर हरत नित नमि-नमि पर-पीर ;
सींचत सिखरी सौं निकसि निमन बहत नद तीर।

भावों के घात-प्रतिघात का भी कविवर श्रीदुलारेलाल ने अनूठा वर्णन किया है। जैसे—

जीवन - धन - जय - चाह धन कंकन-बंधन करति ;
उत तन रन-उतसाह, इत बिछुरन की पीर मन।
हिय उलही तिय पेखि पिय, बिलखी दुलही देखि ;
सुखनभ-दुखधर-बीच की मन-त्रिसंकु-गति लेखि।

संयोग-शृंगार के वर्णन में भी कवि ने रति-भाव की सरस अनुभूति की अभिव्यंजना को ही प्रधानता दी है। जैसे—

लेत-देत संदेस सब, सुनि न सकत कछु कोय ;
बिना तार कौ तार जनु कियौ दृगनु तुम दोय।
आवन-बात बही जु धन, नयन सजन लिय मूँदि ;
नेह-गही वह मनचही रही मही नख खूँदि।
दंपति - हित - डोरी खरी परी चपल चित - डार,
चार चखन - पटरी अरी, झोंकनि झूलत मार।

दुलारे-दोहावली में प्रधानतया विप्रलंभ या वियोग-शृंगार का वर्णन पाया जाता है। कविवर ने इसमें भाव-व्यंजना या रस-व्यंजना के अतिरिक्त वस्तु-व्यंजना का भी आश्रय लिया है, परंतु इनकी वस्तु-व्यंजना औचित्य की सीमा का उल्लंघन करके खिलवाड़ के रूप में कहीं नहीं हुई है। इनके भावों में स्वाभाविक मृदुता और सरसता है। सहृदय भावुक कवि ने अन्यान्य कवीश्वरों के समान विरह के ताप को लेकर खिलवाड़ नहीं किया है, फिर भी इनका विरह-वर्णन बड़ा ही तीव्र और चुटीला है। यहाँ दो-चार उदाहरण देखिए—

कठिन बिरह ऐसी करी, आवति जबै नगीच—
फिरि-फिरि जाति दसा लखैं कर दृग मींचति मीच।
नई लगन किय गेह, अली, लली के ललित तन ;
सूखत जात अछेह, तरु ज्यौं अंबरबेलि सौं।
तचत बिरह-रबि उर-उदधि, उठत बिकलता-मेह,
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत बहुरि अछेह।
धाय धरति जौ अंग नहिं मुरछा - अली अयान,
उमगि प्रान - पति - संग तौ करतौ प्रान पयान।
बिरह - सिंधु उमड़्यौ इतौ पिय - पयान - तूफ़ान,
बिथा - बीचि बूड़त अली, अथिर प्रान - जलजान।

कविवर ने भक्ति-शृंगार के वर्णन को भी अपनी दोहावली में, उचित मात्रा में, अनूठे ढंग से, रक्खा है। यहाँ दो-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

श्रीराधा बाधाहरनि - नेहअगाधा - साथ—
निसचल नयन-निकुंज मैं नचौ निरंतर नाथ!

बस न हमारौ, करहु बस, बस न लेहु प्रिय लाज ;
बसन देहु, ब्रज मैं हमैं बसन देहु ब्रजराज !

श्रीकृष्ण-भक्ति की वैष्णव-संप्रदायों की इस सखी-भक्ति के अतिरिक्त आपने रहस्यवादियों की शृंगार-भक्ति के भी दोहे कहे हैं। दो दोहे यहाँ देखिए—

नीच मीच कौं मत कहै, जनि उर करै उदास ;
अंतरंगिनी प्रिय अली पहुँचावति पिय-पास।
समय समुझि सुख-मिलन कौ, लहि मुख-चंद उजास ,
मंद - मंद मंदिर चली लाज - मुखी पिय - पास।

शांत-रस और भक्ति की सुधा-धारा भी कविवर ने अपने अनेक दोहों में अत्युत्कृष्टतया प्रवाहित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इस बात के प्रमाण-स्वरूप निम्न-लिखित दो-चार दोहे देखिए—

आयु-रात जग-पलँग परि, जीवन-सपन-भुलाइ ,
आतम-ज्ञान बिहाइ तैं मैं - तूँ ही बरराय।
जगि-जगि, बुझि-बुझि जगत मैं जुगनू की गति होति ;
कब अनंत परकास सौं जगिहै जीवन-जोति ?
दरसनीय सुनि देस वह, जहँ दुति-ही-दुति होइ ,
हौं बौरो हेरन गयौ, बैठ्यौ निज दुति खोइ।

इसी में योग-वर्णन का यह दोहा भी दर्शनीय है—

इड़ा - गंग, पिंगला-जमुन सुखमन-सरसुति-संग—
मिलत उठति बहु अरथमय अनुपम सबद - तरंग।

भक्ति-वर्णन के निम्न-लिखित दोहे भी देखिए, कैसे अनूठे हैं—

बिषय-बात मन-नाव कौं भव-नद देति बहाइ ;
पकरु नाव-पतवार दृढ़, चट लगिहै तट आइ।
तलफत दृग-पट आय, तन-पिंजर मैं बिकल ह्वै ;
उरि न प्रान-खग जाय, प्रभु ! राखौ दै दरस-फल।
अगम सिंधु जिमि सीप-उर मुकता करत निवास ,
तिमिर-तोम तिमि हृदय बसि करु हृदयेस ! प्रकास।
ग्राह-गहत गजराज की गरज गहत ब्रजराज—
भजे गरीब-निवाज कौ बिरद बचावन - काज।
नंद - नंद सुख - कंद कौ मंद हँसत मुख - चंद ,
नसत द्वंद - छलछंद - तम, जगत जगत आनंद।

इस कवि ने चेतावनी के भी बड़े ही चुटीले और गंभीर दोहे कहे हैं—

जग - नद मैं तेरी परी देह - नाव मँझधार ;
मन-मलाह जो बस करै, निहचै उतरै पार।
गई रात, साथी चले, भई दीप-दुति मंद,
जोबन-मदिरा पी चुक्यौ, अजहुँ चेति मतिमंद।

कविवर दुलारेलाल ने अनेक दोहों में सजीव प्रतिमाओं की तसवीरें खींच दी हैं, जैसे—

नई सिकारिनि - नारि, चितवन - बंसी फेंकिकै,
चट घूँघट-पट डारि, चंचल चित-झख लै चली।
लंक लचाइ, नचाइ दृग, पग उँचाइ, भरि चाइ—
सिर धरि गागरि डगर महँ नागरि नाचति जाइ।

वीर-रस की अभिव्यंजना में जो दोहे लिखे गए हैं, उनमें कवि को अपूर्व सफलता मिली है। यहाँ दो-चार दोहे देखिए—

भ्रमी भीर, भवभामिनी भई चित्र - अवरेखि ;
भयौ भयाकुल भीष्म हू भीष्म भीष्म-प्रण पेखि।
दुष्ट - दनुज-दल-दलन कौं धरे तीक्ष्ण तरवार,
देश - शक्ति दुर्गावती दुर्गा कौ अवतार।
को तो-सो जग-बीच, करन, भयौ करनी-करन?
नाच रही सिर मीच, तऊ न छाँड़ी बान निज!
छुट्यौ राज, रानी बिकी, सहत डोम-गृह द्वंद,
मृत सुत हू लखि प्रिया सौं कर माँगत हरिचंद।

इन दोहों में ओज और वीर-रस की अभिव्यंजना का हृदयहारी कौशल देखते ही बनता है!

नीति-वर्णन की सूक्तियों में भी दुलारे-दोहावली में अद्‌भुत चमत्कार आया है। देखिए—

संगत के अनुसार ही सबकौ बनत सुभाइ ;
साँभर मैं जो कछु परै, लवन-रूप ह्वै जाइ।
होत निरगुनी हू गुनी बसैं गुनी के पास ;
करत लुएँ खस सलिलमय सीतल, सुखद, सुबास।
पागल कौं सिच्छा कहा, साधू कौं तरवार?
कहा अंध कौं आरसी, त्यागी कौं घर-बार?
नियमित नर निज काज-हित समय नियत करि लेय ;
रजनी ही मैं गंध ज्यौं रजनी-गंधा देय।
संतत सहज सुभाव सौं सुजन सबै सनमानि—
सुधा-सरस सींचत स्रवन सनी-सनेह सुबानि।

सौंदर्य-वर्णन में कवि ने मानुषी रूप और प्रकृति का श्लाघ्य वर्णन किया है। स्मरण रहे, कला में सौंदर्य प्रधान है। इसी से कवि सौंदर्य का वर्णन करता है। बाह्य प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन संसार के संपूर्ण श्रेष्ठ कवि सदा से करते आए हैं। कविवर दुलारेलाल के ऐसे वर्णनों में जो श्रेष्ठता है, उसे निम्न-लिखित दोहों में देखिए। मानुषी रूप का वर्णन देखिए—

बिंब देखिबे कौं कहा झुकति प्रपातहिं तीर?
भोरी, तुव मुख-छबि लखैं होत बिकल, चल नीर!
चख-झख तव दृग-सर-सरस-बूड़ि, बहुरि उतराय—
बेंदी छटके मैं छटकि अटकि जात निरुपाय।
झीनैं अंबर झलमलत उरजनि-छबि छितराइ;
रजत-रजनि जुग चंद-दुति अंबर तैं छिति छाइ।
मोह - मूरछा लाइ, करि चितवन - करन - प्रयोग,
छबि-जादूगरनी करति बरबस बस चित-लोग।
मैन-ऐन तव नैन, सोहैं सरसिज-से सुभग;
ए बिकसित दिन-रैन, वे बिकसित बस दिबस हीं।
कढ़ि सर तें द्रुत दै गई दृगनि देह-दुति चौंध;
बरसत बादर बीच जनु गई बीजुरी कौंध।

प्राकृतिक वर्णनों में भी विलक्षण सौंदर्य के साथ कवि ने काल्पनिक भाव-सौंदर्य का अभिन्न मेल मिलाकर हृदयग्राही सौंदर्य की सृष्टि की है। स्मरण रहे, जनसाधारण की दृष्टि से कवि की दृष्टि कुछ विलक्षण होती है। शुभ्र-सलिला सरिता जनसाधारण की दृष्टि में शुभ्र-सलिला सरिता-मात्र है, पर कवि की दृष्टि में उस शुभ्र-वसना सुंदरी का शरीर शृंगार की क्रीड़ा-भूमि है। निम्न-लिखित दोहों से पाठकों को कविवर दुलारेलाल के प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन की महत्ता भली भाँति विदित हो सकेगी। देखिए—

हिममय परबत पर परति दिनकर - प्रभा प्रभात;
प्रकृति - परी के उर - पर्‌यौ हेम - हार लहरात।
नखत - मुकत आँगन - गगन भरति प्रकृति - मा रात,
बाल हंस चुपचाप चट चमक - चोंच चुगि जात।
जनु जु रात - बिछुरन रहे नलिनी - तिय - मुख छाइ,
वेई ओस - आँसू करनि पोंछत रबि - पिय आइ।
दिन - नायक ज्यौं - ज्यौं बढ़त कर - अनुराग पसारि,
त्यौं-त्यौं लजि सिमटति, हटति निसि-नवनारि निहारि।
लरिकाईं - ऊषा दुरी, झलक्यौ जोबन - प्रात,
छई नई छबि - रबि - प्रभा नारि - प्रकृति के गात।

लखि जग - पंथी अति थकित, संझा - बाँह पसारि—
तम - सरायँ मैं दै रही छाँहँ छपा - भटियारि।

जटित सितारन - छंद, अंगनि अंबर झलमलत ;
चली जाति गति मंद, सजनि-रजनि मुख-चंद-दुति।

हमें आश्चर्य होता है, जब हम देखते हैं कि इतने संकुचित स्थल में कविवर उपर्युक्त विषयों के सिवा देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावों के वर्णनों की उपेक्षा न करके उनका उदात्त और समुज्ज्वल वर्णन कर सके हैं।

मातृभूमि-वंदना का निम्न-लिखित दोहा कवि के अगाध देश-प्रेम का साक्षी है—

मम तन तव रज-राज, तव तन मम रज-रज रमत ;
करि बिधि-हरि-हर-काज, सतत सृजहु, पालहु, हरहु।

इसके सिवा राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण निम्न-लिखित गंभीर दोहे तो सर्वथा अनूठे ही हैं। देखिए—

देहु देस-हित झर-सरिस झर-झर जीवन-दान ;
चरस-सरिस रुकि-रुकि कहा देत निपट नादान ?
यौरप-दुःशासन निठुर खींचत लखि निधि-चीर—
जन्मभूमि - कृष्णा करी 'मोहन' अभय - सरीर।
गांधी-गुरु तैं ज्ञान लै, चरखा - अनहद - जोर—
भारत सबद - तरंग पै बहत मुकति की ओर।
पर-राष्ट्रन-अरि-चोट तैं धन-स्वतंत्रता-कोट—
तट-कर-परकोटा बिकट राखत अगम, अगोट।

निम्न-लिखित दोहे में स्वराज्य के आदर्श का जो अनुपम वर्णन है, वह राष्ट्र-प्रेमियों को ध्यान में रखना चाहिए—

सोहत सतगुन-सुरँग सौं सुचि स्वराज-सुरचाप—
सुख, सेना, सिच्छा, बनिज, कृषि, धन, काज-कलाप।

राष्ट्र की प्रधान समस्या इस समय अछूतोद्धार और अस्पृश्यता-निवारण है। इसके विषय में सहृदय कलाकार कवि ने बड़ी ही ज़ोरदार सूक्तियाँ कही हैं। तीन दोहे यहाँ द्रष्टव्य हैं—

रही अछूतोद्धार - नद छुआछूत - तिय डूबि ;
सास्त्रन कौ तिनकौ गहति क्रांति-भँवर सौं ऊबि।
कलिजुग ही मैं मैं लखी अति अचरजमय बात—
होत पतित-पावन पतित, छुवत पतित जब गात।
छुआछूत-नागिन - डसी परी जु जाति अचेत,
देत मंत्रना - मंत्र तैं गांधी - गारुड़ि चेत।

दोहावलीकार के अनेक दोहों में वैज्ञानिक सिद्धांतों का भी बड़ा ही अनूठा समावेश किया गया है। ऐसे दो दोहे यहाँ देखिए—

लहि पिय-रबि तैं हित-किरन बिकसित रह्यौ अमंद ;
आइ बीच अनरस-अवनि किय मलीन मुख-चंद।
हौं सखि, सीसी आतसी, कहति साँच-ही-साँच ;
बिरह-आँच खाई इती, तऊ न आई आँच !

भावोत्कृष्टता के विषय में दुलारे-दोहावली में पचासों दोहे हैं। यहाँ मैं केवल दो दोहे स्थाली-पुलाक-न्याय से परिचय प्राप्त कराने के हेतु देता हूँ—

खरी दूबरी तिय करी बिरह निठुर, बरजोर,
चितवन चढ़ति पहार जनु जब चितवति मम ओर।
धाय धरति जौ अंग नहिं मुरछा-अली अयान,
उमगि प्रान-पति - संग तौ करतौ प्रान पयान।

साम्यवाद के विषय में निम्न-लिखित दोहा पढ़कर कवि के व्यापक ज्ञान के साथ-साथ उसकी हार्दिक अनुभूति का भी पता चलता है। देखिए तो समय की प्रगति की कैसी सुंदर, उदार छटा निम्न-लिखित दोहा-रत्न में झलक रही है।

काम, दाम, आराम कौ सुघर समनवय होय,
तौ सुरपुर की कलपना कबहूँ करै न कोय।

इस तरह आप देखेंगे कि ब्रजभाषा के इस कवि ने नवीन और प्राचीन, सभी विषयों पर सफलता-पूर्वक क़लम चलाई है।

दोहावली का संक्षिप्त परिमाण

उपर्युक्त उद्धरणों से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि काव्य का यह छोटा-सा, परंतु बहुमूल्य कोष अत्यंत गंभीर और श्रेष्ठ वर्णनों का आगार है। इसकी रचना करके श्रीदुलारेलालजी अमर हो गए हैं। जो सज्जन इसके परिमाण की लघुता की ओर देखकर इसे श्रेष्ठ आसन देने में आनाकानी करें, उन्हें साहित्य-संसार के इस तथ्य का स्मरण रखना चाहिए कि किसी रचना का आदर परिमाण से नहीं, किंतु काव्योत्कर्ष की दृष्टि से होता है। संस्कृत-साहित्य के विशाल भांडार में एक सौ मुक्तक-रत्नों के कोष अमरुक-शतक का आदर उसकी रचना के काल से आज तक होता आया है। बड़े-बड़े काव्य-मर्मज्ञ, समर्थ समालोचक और साहित्य-गुरु-गंभीर रीति-ग्रंथों के प्रणेता उसे अत्यंत आदर देते आए हैं। अमरुक-शतक सहस्रों काव्य-प्रबंधों में सर्वोत्कृष्ट माना गया है। इसकी अपूर्वता पर मुग्ध होकर साहित्य-शास्त्र-निष्णात परीक्षकों ने यह घोषणा की है—

अमरुककवेरेकः श्लोकः प्रबन्धशतायते।

ध्वन्यालोक-जैसे साहित्य-गुरु-गंभीर रीति-ग्रंथ-रत्न के रचयिता उद्भट साहित्याचार्य

श्रीआनंदवर्द्धन ने ध्वन्यालोक में मुक्तकों पर विचार करते हुए अमरुक-शतक के विषय में लिखा है—

मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते । यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृंगारस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव ।

अर्थात्, "एक संपूर्ण ग्रंथ (प्रबंध) में कवियों को रस-स्थापना का जो पूर्ण प्रबंध करना पड़ता है, वही एक मुक्तक में भी, जिस प्रकार अमरुक कवि के 'मुक्तक' शृंगार-रस का प्रवाह बहाने के कारण ग्रंथों (प्रबंधों) की समता प्राप्त करने में प्रसिद्ध हैं।"

जब केवल १०० मुक्तकों के कोष अमरुक-शतक को श्रेष्ठता और काव्योत्कर्षता के कारण इतना अधिक सम्मान प्रदान किया जा सकता है, तब कोई कारण नहीं कि दो सौ दोहों की दुलारे-दोहावली को, उत्कृष्ट रचना के कारण, समुचित सम्मान प्रदान न किया जाय। हम जानते हैं, संसार में ऐसे सज्जनों की संख्या बहुत ही थोड़ी है, जो दूसरों की उत्तम रचना को यथोचित आदर देने की उदारता से संपन्न होते हैं। हिंदी-साहित्य-सूर्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो स्पष्ट ही कहा है—

ते नरवर थोरे जग माहीं,
जे पर-भनित सुनत हरषाहीं।

फिर यह समय तो छिद्रान्वेषण-प्रधान कहा जा सकता है। इसमें किसी कवि को न्यायोचित सम्मान की आशा करना एक प्रकार से दुराशा है।

कविराज महाराजा भर्तृहरि ने अपने वैराग्य-शतक में ठीक ही कहा है—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ;
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्। (श्लोक २)

अर्थात्, "जो विद्वान् हैं, वे मत्सर-ग्रस्त हैं ; जो धनवान् हैं, वे गर्व से दूषित हृदय-वाले हैं ; इनके सिवा जो और लोग हैं, वे अज्ञानी हैं, इसीलिये सुभाषित (सूक्ति-प्रधान उत्तम काव्य) शरीर में ही जीर्ण-शीर्ण हो जाता है।"

भावापहरण

यहाँ प्रसंग-वश भावापहरण पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि दुलारे-दोहावली के कुछ दोहे प्राचीन कवीश्वरों के भावों की छाया पर बनाए गए हैं। स्मरण रहे, अपने पूर्ववर्ती मनुष्यों के प्राप्त किए हुए ज्ञान से परवर्ती लोग लाभ उठाते आए हैं। यह संसार के आदि काल से होता आया है, और अंत तक होता जायगा। इसकी गति अबाध है। किसी भी क्षेत्र में यही सिद्धांत सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा। संसार के प्रायः संपूर्ण धर्म और धर्माचार्यों के विषय में भी यही नियम लागू है। किसी एक धर्माचार्य ने सत्य के जिस सिद्धांत को खोज निकाला था, उसी का प्रतिपादन संपूर्ण धर्माचार्य करते आए हैं। अवश्य भाष्य में परिवर्तन हुए हैं, और यही बादवाले आचार्यों की मौलिकता कही जाती है।

कवि के संबंध में भी यही नियम लागू है। पूर्ववर्ती कवियों के भावों से परवर्ती कवि सदैव लाभ उठाते आए हैं। पर प्रथम श्रेणी के कलाकार कवि वे हैं, जो उस पूर्व-प्रसिद्ध भाव में कुछ नूतनता लाए हैं। ऐसे लोग भावापहरण के दोषी नहीं ठहराए जाते, क्योंकि जिस मैदान में पूर्ववर्ती ने अत्यंत प्रसिद्धि प्राप्त की हो, उसमें खम ठोंककर उतरना और ऐसा बल—ऐसा कौशल—दिखलाना, जैसा वह परम प्रसिद्ध व्यक्ति भी न दिखला सका हो, सचमुच बड़ा ही प्रशंसनीय और अभिनंदनीय है। ध्वन्यालोककार श्रीआनंदवर्द्धनाचार्य ने भावापहरण पर विचार करते हुए लिखा है—

यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्
स्फुरितमिति मदीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते ;
अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्
सुकविरुपनिबध्नन् निन्द्यतां नोपयाति।
(ध्वन्या० ४, १६)

अर्थात्, "जिस कविता में सहृदय भावुक को कुछ नूतन चमत्कार सूझ पड़े, उसमें यदि पूर्ववर्ती कवि की छाया भी झलकती हो, तो उससे कोई हानि नहीं। इस प्रकार के काव्य का रचयिता कवि अपनी बंधच्छाया से पुराने भाव को नवीन स्वरूप देने के कारण निंदा का पात्र नहीं समझा जा सकता।"

यही पुनः लिख गए हैं—

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ;
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः।

अर्थात्, "पेड़ वही पुराने होते हैं, पर वसंत अपने रस-संचार से उन्हें नवीन रूप प्रदान करके नया बना देता है। इसी प्रकार सुकवि अपनी प्रतिभा से पुराने काव्यार्थ में नवीन रस का संचार कर उन्हें विकासक वसंत के समान शोभामय और रमणीय बना देता है।"

इसी कारण संसार की संपूर्ण भाषाओं के महाकवियों की रचनाओं में पूर्ववर्ती कवियों की छाया पाई जाती है। कवि-कुल-कलाधर कालिदास, शेक्सपियर, तुलसीदास, सूरदास, बिहारी, ग़ालिब और रवींद्रनाथ आदि संपूर्ण कवीश्वरों की रचना में पूर्ववर्ती कवियों के भावों की छाया प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। कविवर दुलारेलाल की दुलारे-दोहावली भी इस नियम का अपवाद नहीं। उनके भी कुछ दोहे पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं के आधार पर लिखे गए हैं। पर यह बात अवश्य है कि ऐसे स्थलों में दुलारेलाल अपनी प्रतिभा के बल से नूतन चमत्कार उत्पन्न करके पूर्ववर्ती कवीश्वरों को बहुत पीछे छोड़ गए हैं, और इसी कारण वह अर्थापहरण या भावापहरण के दोषी नहीं ठहराए जा सकते। यह बात मैंने दुलारे-दोहावली की 'पीयूषवर्षिणी' व्याख्या में भली भाँति सिद्ध की है।

हाँ, एक बात यहाँ और कथनीय है। वह यह कि काव्य का आनंद सहृदय ही ले सकते हैं। जो सहृदय नहीं हैं, उनका किसी कविता को अच्छा या बुरा कहना उनकी धृष्टता-मात्र है। एक संस्कृत-कवि ने इसके विषय में यथार्थ ही लिखा है—

यत्सारस्वतवैभवं गुरुकृपापीयूषपाकोद्भवं
तल्लभ्यं कविनैव नैव हठतः पाठप्रतिष्ठाजुषाम् ;
कासारे दिवसं वसन्नपि पयः पूरं परं पंकिलं
कुर्वाणः कमलाकरस्य लभते किं सौरभं सैरिभः।

अर्थात्, "गुरु-कृपा-रूप पीयूष-पाक से उत्पन्न वाणी (सरस्वती) के वैभव को कविजन ही प्राप्त कर सकते हैं, न कि वे प्रतिष्ठा-लोलुप, जो कविता का पाठ करके हठ-पूर्वक सम्मान चाहते हैं। सरोवर में सारे दिन पड़ा रहनेवाला और समग्र जल को कीचड़मय कर डालनेवाला भैंसा क्या कभी कमलों की सुंदर सुगंध प्राप्त कर सकता है ?"

व्यंग्य-प्रधान रचना का गूढ़त्व और टीका

अंत में इतना निवेदन और करना है कि दुलारे-दोहावली की रचना प्रधानतया व्यंग्य-प्रधान उत्तम काव्य में हुई है, अतएव इसका पूरा आनंद मर्मज्ञ विद्वान् ही ले सकते हैं। व्यंग्य-प्रधान काव्य को भली भाँति हृदयंगम करने की जिनमें क्षमता नहीं है, जो सहृदय काव्य-मर्मज्ञ नहीं हैं, उन्हें इसका समझना कठिन होगा। इसी से ऐसे उच्च कोटि के साहित्य-ग्रंथ का सटीक होना आवश्यक है। मैंने इस पर टीका और विस्तृत व्याख्या लिखी है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी। यहाँ प्रसंग-वश मैं कवि की प्रतिभा को प्रदर्शित करने के हेतु इस दोहावली से एक पद्य की टीका तुलनात्मक आलोचना-सहित उपस्थित करता हूँ। यदि इसी प्रकार गंभीरता से इसके संपूर्ण दोहे पढ़े जायँगे, तो इसका पूरा रहस्य खुलेगा, और महत्ता विदित होगी।

दोहावली के एक छंद की परीक्षा

गुरुजन-लाज-लगाम, सखि-सिख-साँटो हू निदरि—
टरत न, प्रिय - मुख-ठाम अरत अरीले दृग-तुरग।

शब्दार्थ—गुरुजन = जेठे-बड़े, माता-पिता और आचार्य आदि। साँटो = कोड़ा, चाबुक। ठाम = ठाँव, स्थान। अरीले = अड़ीले, अड़ जानेवाले, हठी। तुरग = घोड़ा, अश्व।

अन्वय—गुरुजन-लाज-लगाम (और) सखि-सिख-साँटो हू निदरि अरीले दृग-तुरग प्रिय-मुख-ठाम अरत, टरत न।

अवतरण—कोई उच्च-कुल-संभूता, ज्ञातयौवना, मुग्धा नवतरुणी किसी सुंदर, तरुण नायक के रूप-जाल में बेतरह फँस गई है। उसका वह प्रेम-पात्र उस सुंदरी के घर आता-जाता रहता है। वह सुंदरी कभी-कभी गुरुजनों की उपस्थिति में भी उसकी ओर कनखियों से देखकर अपने रूप-प्यासे लोचनों को तृप्त करती है। उसकी अंतरंगिणी सखी उसकी प्रेम-विह्वल चेष्टाओं से उसका उस नायक पर अनुरक्त होना भाँप लेती है। वह उसे प्रेम-मार्ग की

कठिनाइयाँ दिखलाती है, और उसे प्रेम-मार्ग की ओर अग्रसर न होने का उपदेश देती है। वह उसे सुन-भर लेती है, पर 'हाँ-हूँ' करने के सिवा और कोई उत्तर नहीं देती। सखी के उपदेश के बाद भी वह नागरी कुलबाला एक दिन अपने उसी प्रेम-पात्र को अपने घर के सम्मुख अश्वारूढ़ हो जाते हुए देखती है। उस समय वह गुरुजनों में बैठी थी। गुरुजनों को पीठ देकर उसने मार्ग की ओर दृष्टि दौड़ाई, और वहाँ उसके प्रेम-पात्र के सुंदर मुख पर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई। गुरुजनों की उपस्थिति के कारण संकोचशीलता और अंतरंगिणी सखी की निकटस्थता के कारण भेद-प्राकट्य के भय से उस सुंदरी प्रेमिका को प्रेम-पात्र की ओर देखने में बाधा होती है। उस समय के विभिन्न मनोभावों के आघात-प्रतिघात के कारण उस किशोरी बाला की मुखाकृति में जो अंतर होता है, उसे वह सखी देखती है; पर साथ ही वह यह भी देखती है कि प्रेम-पात्र के सुंदर मुख की ओर से उस 'नई लगन'-वाली बाला के नेत्र हटते नहीं। इसी समय का भाव-पूर्ण शब्द-चित्र इस सोरठे में कवि ने अपनी कल्पना के बल से स्वाभाविक, सुंदर, सजीव ढंग से अंकित किया है।

पिंगल—उपर्युक्त पद्य में संगीत की मधुर लय बँधी हुई है, और उसमें गणना का क्रम भी है; अतः छंद-शास्त्र की दृष्टि से यह छंद है। इसके चारो चरणों में गुरु-लघु वर्णों का क्रम न होकर मात्राओं का स्थिर परिमाण है; अतएव यह मात्रिक छंद है, वर्ण-वृत्त नहीं। जिस मात्रिक छंद के पहले और तीसरे अर्थात् विषम चरणों के तथा दूसरे और चौथे अर्थात् सम चरणों के लक्षण मिलते हों, उसे मात्रिक अर्द्धसम छंद कहते हैं। उपर्युक्त पद्य में पहले और तीसरे चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे में तेरह-तेरह मात्राएँ हैं, अतएव यह ४८ मात्राओं का सोरठा-छंद है।

भाषा-सौष्ठव—इस छंद की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। प्रायः प्रत्येक शब्द ब्रजभाषा-काव्य-सागर का आबदार मोती है। भाषा-मर्मज्ञ सुकवि ने ब्रजभाषा में 'ड़' को 'र' में बदलने की प्राचीन परिपाटी का मर्म समझकर 'ड़कार' की कठोरता निवारण करने के अर्थ 'अड़त' और 'अड़ीले' के स्थान में 'अरत' और 'अरीले' लिखकर कोमलता एवं माधुर्य की रक्षा की है। रसिकों के कान ही इसका मूल्य अंकित करने में समर्थ हैं। छंद में छोटे-छोटे सहज-रसीले समास हैं, और कर्ण-कटु वर्णों का प्रायः अभाव है, जो सोरठे में वर्णित शृंगार-रस के सर्वथा अनुकूल है। टकार का प्रयोग दो बार और ठकार का केवल एक बार हुआ है। इनमें वर्ण्य विषय के औचित्य का बड़ा ही ध्यान रक्खा गया है। स्मरण रहे, केवल कोमलतम मधुर भाषा का प्रयोग कर लेना ही स्तुत्य नहीं। यथार्थ में तो भाषा को भावानुगामिनी होना चाहिए। काव्य की भाषा के लिये केवल यही पर्याप्त नहीं कि उसमें कर्ण-कटुता का अभाव हो। यथार्थ में भाषा ऐसी होनी चाहिए कि उसके श्रवण-मात्र से अर्थ प्रतिध्वनित हो जाय। 'टरत न' में खिंचाव की दृढ़ता या कठोरता और नायिका की विवशता का अच्छा भाव अंकित हुआ है। 'ठाम' के ठकार में भी प्रबलता दिखलाने के हेतु 'ठकार' का प्रयोग अत्यंत समीचीन हुआ है। है भी बड़ा

प्रबल ठाम, जहाँ से 'दृग-तुरग' हटाने का भरपूर प्रयत्न करते रहने पर भी रत्ती-भर नहीं टल सकते। 'टरत न' के समीचीन प्रयोग ने 'दृग-तुरग' के रूपक में जान डाल दी है। फिर उस 'प्रिय-मुख-ठाम' में प्रेम के प्रबल आकर्षण की दृढ़ता के लिये ठकार और प्रेम की मधुरिमा को अंकित करने के लिये मकार का प्रयोग अत्यंत समीचीन हुआ है। 'साँटो' का टकार भी उसके वाच्यार्थ की परुषता को व्यक्त करने के हेतु ही प्रयुक्त हुआ है। वर्णों की ऐसी अनुपम बहार को वर्ण और ध्वनि के वेत्ता सहृदय ही पूर्णरूपेण जानने में समर्थ हो सकते हैं।

छंद के प्रत्येक शब्द का युक्ति-पूर्ण बड़ा ही सार्थक प्रयोग हुआ है। प्रत्येक शब्द ख़ूब सोच-समझकर, तौलकर रक्खा गया है। भाषा-शास्त्र-वेत्ता ही इस अद्भुत कौशल को समझेंगे। जिस शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग किया गया है, वह शब्द उस अर्थ को जैसी गंभीरता और स्पष्टता से व्यक्त कर रहा है, यह दर्शनीय है। स्मरण रहे, कभी-कभी काव्य का अशेष सौंदर्य-सागर केवल एक शब्द में लहराता हुआ देख पड़ता है। इस सोरठे में 'निदरि', 'अरीले' आदि के प्रयोग ऐसे ही हुए हैं। फिर इसमें शब्द-चमत्कार की विलक्षणता भी है। यदि 'जन' के आदि में 'ज' है, तो उससे संयुक्त 'लाज' के अंत में भी 'ज' है। 'सखि' और 'सिख' में 'स' और 'ख' को अकार-इकार-सहित क्रम से एक साथ तौलकर रखना अनूठा है। 'मुख' और 'ठाम' में भी यदि 'मुख' के आदि में मकार है, तो उससे संयुक्त 'ठाम' के अंत में भी मकार छटा छहराता है।

शब्द-सुषमा भी निराली ह। 'लाज-लगाम', 'अरत अरीले' और 'दृग-तुरग' में क्रमशः 'ल', 'अ' और 'ग' की छेक होने से छेकानुप्रास की छटा और 'सखि-सिख-साँटो' में वृत्यानुप्रास की बहार देखकर शब्द-समृद्धि की बरबस प्रशंसा करनी पड़ती है। 'जन', 'लगाम', 'निदरि', 'मुख' और 'ठाम' में सानुनासिक वर्ण 'न' और 'म' की आवृत्ति से भाषा में माधुर्य-गुण बढ़ गया है, जिसमें 'साँटो' का अर्द्धानुस्वार भी सहायक है। सोरठे को सुनते ही अर्थ ध्वनित हो जाता है, अतएव प्रसाद गुण की मात्रा यथेष्ट है। भाषा के सजीव और स्वाभाविक प्रवाहमय बोलचाल की दृष्टि से भी यह सोरठा उत्तम बन पड़ा है। विवशता और आकर्षण के समय के एक विशेष प्रकार के बोलने का जो स्वाभाविक ढंग इस सोरठे की भाषा में है, वह भाषा के जौहरियों को विमोहित करने में पर्याप्त समर्थ है।

इस प्रकार सब मिलाकर इस सोरठे की भाषा बड़ी ही सजीव, उत्कृष्ट, रसानुकूल और भावानुगामिनी है, तथा उसमें शब्दालंकारों की सहज-सुकुमार मनोहरता के साथ-साथ प्रसाद और माधुर्य का बड़ा ही मनोरम निदर्शन है। बोलचाल की दृष्टि से तो यह भाषा अत्यंत सबल और श्रेष्ठ गुणमयी है।

टीका—गुरुजन की लज्जा की लगाम और सखी के उपदेश के चाबुक को भी कुछ न गिनकर अड़ीले नेत्र-अश्व प्रेम-पात्र के मुख-स्थान पर अड़ जाते हैं, (फिर वहाँ से) टलते नहीं।

व्याख्या—यौवन के प्रभातकाल में मदन-मलयानिल के मधुर वेदना-भरे, मनोमुग्धकारी

झोंकों से किसी कुल-कन्या के कोमलतम हृदय-मंदिर के स्निग्ध कपाट खुल जाते हैं, और उसमें किसी तरुण नायक के रुचिर रूप-मारुत की लहर रति-भाव की सुगंध बिखेर देती है। उसके रोम-रोम में व्याकुल पुलक का आवेश होता है। उसके लोचन-चकोर प्रेम-पात्र के मुख-चंद्र की रूप-सुधा का पान करने के लिये विह्वल हो, लालच के फेर में पड़कर प्रेम-व्रत का अनुष्ठान करते हैं। अतृप्त लालसा का ज्वार उठता है। प्रेम-पात्र की अनुपस्थिति में भी नेत्र उसी को खोजते रहते हैं। प्रेम की कसक से मधुर वेदना का मृदु भार हृदय को दबाए रहता है। प्रेम-प्रतीक्षा और दर्शन-लालसा के भँवर में जीवन-नौका डगमगाती है।

उस नवयौवना बाला को अपने कुल-शील की मर्यादा का ज्ञान है। वह गुणागरी नागरी है। उसमें पूर्ण विवेक है, और उसे अपने जेठे-बड़े लोगों का संकोच भी है। इतना सब होने पर भी उस बाला को प्रेम-पात्र के प्रेम ने कुछ का कुछ बना दिया है। वह जैसे और ही कुछ हो गई है। उसकी चेष्टाएँ भी अब पूर्वानुसार नहीं रहीं। उसकी चेष्टाओं से उसकी मनोदशा का वैपरीत्य स्पष्ट-सा होने लगा है। उसकी हितैषिणी, विवेकशीला, अंतरंगिणी सखी उसकी संपूर्ण चेष्टाओं को अवलोकन करती और बड़ी सहानुभूति से उसकी वेदना का कारण जानने का प्रयत्न करती है। पश्चात् अपने सखी-कर्तव्य का पालन करने की विशुद्ध शुभ भावना से प्रेरित होकर उसे इस प्रकार प्रेम-पथ में पग धरने से रोकती है। वह उसे धर्म एवं समाज आदि का भय दिखलाती और कर्तव्याकर्तव्य समझाती तथा प्रेम-पथ में पैर न रखने का उपदेश देती है। पर वहाँ तो बात ही कुछ और है। वहाँ तो "भो मन मोहन-रूप मिलि पानी में को लौन।" पानी में जो नमक घुल चुका है, उसे अब पानी से कौन पृथक् करे? सच तो यह है कि "यह दर्दे-सर ऐसा है, जो सर जाय तो जाए।"

प्रेम-परवश नवबाला के नेत्र ऐसे अड़ियल घोड़े बन गए हैं, जो गुरुजनों की लज्जा की लगाम को कुछ भी नहीं गिनते। उन अड़ीले नेत्र-अश्वों को गुरुजन की लाज की लगाम रोक ही नहीं पाती। प्रेम-पात्र के दृष्टिगोचर होते ही नवबाला संकोच के मारे उसके सुंदर मुख-मंडल की ओर चाह-भरी, तृषित दृष्टि से देखने में मन से नेत्रों को रोकती रह जाती है, पर वे रूप-प्यासे नेत्र प्रेम-पात्र के सुंदर मुख की ओर एकटक देखते रह जाते हैं। उसे समाज में अपने गुरुजनों की मान-मर्यादा का एवं उसके इस प्रकार प्रेम-पथ में पड़ने से उनके लज्जित होने के परिणाम का ज्ञान प्रेम-मार्ग में अवतीर्ण होने से रोकता रह जाता है; पर नेत्र प्रेम-पात्र के मुख को देख-देख अघाते ही नहीं, वहीं गड़-से जाते हैं। सहेली के उपदेश का कोड़ा भी उन अड़ियल नेत्र-अश्वों को प्रेम-पात्र के मुख पर अड़ जाने से रोकने में सहायक नहीं होता। उपदेश का कोड़ा प्रेम-पात्र के मुख-स्थान पर अड़े हुए नेत्रों को वहाँ से नहीं हटा सकता। वे नेत्र-अश्व ग़ज़ब के अड़दार (हठीले) हैं। ऐसे अड़ियल टट्टू हैं, जो लाज की लगाम खींचने और उपदेश का कोड़ा पड़ते रहने से भी टस से मस नहीं होते। बेचारी बाला करे भी, तो क्या? मदन और रति ने अशेष-मोहक वासंती श्री प्रेम-पात्र की मुख-छवि में बिखरा दी है।

रस—नायक-दर्शन से नायिका के चित्त में रति-नामक मनोविकार उत्पन्न हुआ है, जो पाहुने के समान आकर चला नहीं गया है, वरन् गृहपति के समान रसोत्पत्तिपर्यंत अतिरस्कृत होकर ठहरता है। इस कारण इस सोरठे में रति-स्थायी भाव है। वह रति-स्थायी भाव नायक का आलंबन करके स्थिर रहता है, अतएव नायक रति-स्थायी भाव का आलंबन विभाव है। नायक की मुख-छवि का दर्शन उद्दीपन विभाव है, जिसके कारण रति-स्थायी भाव उद्दीप्त हो उठता है। नेत्रों का एकटक देखते रह जाना कायिक अनुभाव है, जो हृदय में रति-स्थायी भाव की अनुभूति के अनंतर होता है। लज्जा संचारी भाव है, जो रति-स्थायी भाव की छत्र-छाया में पाहुने के समान संचार करता है। इस प्रकार स्थायी भाव रति आलंबन और उद्दीपन विभाव एवं अनुभाव और संचारी भाव से युक्त होकर शृंगार-रस की पूर्णता को प्राप्त है। स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का छंद में समुचित समावेश होने से सोरठे के प्याले में शृंगार-रस छलक रहा है।

सखी के उपदेश और गुरुजन की लज्जा से यह स्पष्टतया ध्वनित होता है कि नायिका मातृ-पितृ-अधीना परकीया अनूढ़ा है, जो विधिवत् विवाह से शुद्ध स्वकीया हो सकती है। सोरठे में विप्रलंभ शृंगार का वर्णन है, क्योंकि मिलन की अभिलाषा तो है, पर मिलन हुआ नहीं है। विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत इसमें पूर्वानुराग है, क्योंकि यहाँ मिलन के पूर्व केवल दर्शन से प्रीति हुई है, और मिलन की अभिलाषा स्पष्ट प्रबल है। जब प्रेम-पात्र को प्रत्यक्ष देखने से अनुराग उत्पन्न होता है, तब वह पूर्वानुराग के अंतर्गत प्रत्यक्ष दर्शन कहलाता है। उक्त सोरठे के वर्णन में अनूढ़ा परकीया नवबाला को नायक के प्रत्यक्ष दर्शन से उस पर अनुराग हुआ है, अतएव यहाँ पूर्वानुरागांतर्गत प्रत्यक्ष दर्शन स्पष्ट है। सोरठे में मिलन की इच्छा एकटक देखने से स्पष्ट ध्वनित होती है, अतएव इसमें विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत अभिलाषा-दशा का वर्णन है। इसके सिवा नेत्रों का प्रिय-मुख-ठाम पर स्तंभित हो गति-हीन-सा हो जाना जड़ता दशा की भी एक झलक दिखलाता है, पर प्रधानता अभिलाषा-दशा की है।

अलंकार—इस सोरठे में कवि ने 'दृग' और 'तुरग' में अभेद रूपक स्थापित किया है। यह रूपक "गुरुजन-लाज-लगाम, सखि-सिख-साँटो हू निदरि टरत न, प्रिय-मुख-ठाम अरत अरीले" के अवयवों-सहित पूर्णता को प्राप्त है। इस प्रकार का साम्यमय अभेद रूपक में रखना बड़ा ही प्रशंसनीय है। इसमें 'लाज-लगाम' के रूपक के अंतर्गत उसी से परंपरा को प्राप्त 'दृग-तुरग' का मुख्य रूपक है। जब लाज को लगाम कह चुके, तब दृग को तुरग कहना ही पड़ा। 'अरत अरीले' उपमान और उपमेय दोनो के साम्यमय अवयव हैं, जो उस अभेद को अधिक पुष्ट करते हैं। इस प्रकार सोरठे में परंपरित सावयव सम अभेद रूपक अलंकार का प्रकृष्ट उदाहरण है।

सोरठे में वर्णित 'गुरुजन-लाज-लगाम' और 'सखि-सिख-साँटो'-रूप कारण के रहते हुए

भी 'अरीले दृग-तुरग' 'प्रिय-मुख-ठाम' से 'न टरत'। यहाँ प्रतिबंधक के रहते भी एकटक देखने का कार्य होता है, अतएव तृतीय विभावना-अलंकार का समावेश है।

'लाज-लगाम' और 'सिख-साँटो'-रूप कारण के विद्यमान रहते हुए भी 'अरीले दृग-तुरग' प्रिय-मुख-ठाम से नहीं टलते, अतएव कारण के विद्यमान रहने पर भी फल नहीं होता, और सोरठे में विशेषोक्ति-अलंकार सुंदरता से झलकता है। इस प्रकार दो-चार अन्यान्य अलंकार भी झलकते हैं।

"प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति" के नियमानुसार सम अभेद रूपक की प्रधानता होने से इस सोरठे में मुख्य अलंकार सावयव सम अभेद रूपक ही है, जिसकी सोरठे में निराली छटा है।

विशेष—इस कोमल शृंगारी भाव पर ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने लिखा है। कुछ उदाहरण देखिए—

लाज-लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं;
ये मुँहजोर तुरंग लौं ऐंचत हू चलि जाहिं।

(बिहारी)

"लाज की लगाम को नहीं मानते, नेत्र मेरे वश में नहीं हैं; ये मुँहजोर घोड़े की तरह खींचते रहने पर भी चले जाते हैं।"

इस दोहे में भाव की सुकुमारता और बोलचाल की स्वाभाविकता के साथ सुंदर, मँजी हुई भाषा है, पर 'लाज-लगाम' में जो अभेद रूपक उठाया गया था, वह संपूर्णतया न निभकर 'लौं'-वाचक के साथ केवल पूर्णोपमा का सहायक-मात्र रह गया है। यद्यपि रूपक से परिपुष्ट पूर्णोपमा की दोहे में निराली छटा आ गई है, पर फिर भी आदि से अंत तक रूपक के परंपरित सम अभेद रहने में जो काव्य-कौशल है, वह कुछ और ही है। 'लाज-लगाम' 'गुरुजन-लाज-लगाम' की अपेक्षा व्यापक अवश्य है, पर 'गुरुजन-लाज-लगाम' में परकीयांतर्गत अनूढ़ा का जैसा सजीव और स्पष्ट वर्णन है, वैसा 'लाज-लगाम' में नहीं। इसके सिवा सोरठे में 'सखि-सिख-साँटो' का प्रयोग भाव को सबल बनाए हुए है। बिहारी के दोहे में नायिका की सखी की शिक्षा साधारण भी हो सकती है, पर दुलारेलाल के सोरठे में 'सखि-सिख-साँटो' से सखी के प्रबल प्रभावशाली गंभीर उपदेश की जैसी ध्वनि स्पष्ट होती है, उसकी छटा सर्वथा निराली ही है। बिहारी के 'ऐंचत हू चलि जाहिं' में विवशता का जो सुकुमारतम भाव आया है, वह 'टरत न, प्रिय-मुख-ठाम अरत अरीले' में एक भिन्न प्रकार से आकर सर्वथा सुसंस्कृत हो गया है। कहना न होगा कि इस वर्णन में दुलारेलाल ने अपने पूर्ववर्ती बिहारी को पीछे छोड़ दिया है, और कुछ नवीनता—कुछ मौलिकता भी रक्खी है। बिहारी के दोहे में 'दृग-तुरग' मुँहजोर हैं, तो दुलारेलाल के सोरठे में 'दृग-तुरग' 'अरीले' हैं। 'मुँहजोर दृग-तुरग' 'लाज-लगाम' खींचते रहने पर भी चले जाते हैं, और 'अरीले दृग-तुरग' 'लाज-लगाम' के खींचते रहने पर एवं 'सखि-सिख-साँटो'

के लगातार लगते रहने पर भी ऐसे अड़ जाते हैं कि 'प्रिय-मुख-ठाम' से नहीं टलते । हर तरह से दोहे से सोरठा श्रेष्ठ है । हाँ, भाषा के ज़ोरदार बोलचाल की दृष्टि से बिहारी का दोहा ऊपर उठा हुआ जान पड़ता है, पर रूपक के सावयव प्रयोग, वर्णन की सांगोपांगता एवं भाव की प्रबलता के साथ वर्णनीय विषय की स्पष्टता और संपूर्णता में सोरठा दोहे से अधिक श्रेष्ठ है ।

इसी भाव पर अन्य कविवर का यह दोहा है—

मानत लाज-लगाम नहिं, नेकु न गहत मरोर ;
होत लाल लखि बाल के दृग-तुरंग मुँहजोर ।

(मतिराम)

मतिराम ने तो बिहारी के संपूर्ण प्रबंध का अपहरण किया है । फिर भी जितनी व्याकुलता और परवशता बिहारी के दोहे में है, उतनी मतिराम के दोहे में नहीं रह गई है । 'नैना मो बस नाहिं' में विवशता का जो सुकुमार भाव था, वह 'नेकु न गहत मरोर' के प्रबल प्रयोग में न आ सका । जितने गंभीर अर्थ का भाव 'नैना मो बस नाहिं' और 'ऐंचत हू चलि जाहिं' में है, उतने गंभीर अर्थ का भाव 'नेकु न गहत मरोर' में स्वप्न में भी नहीं है । हाँ, यह अवश्य है कि मतिराम ने बिहारी के दोहे के 'लौं' को हटाकर 'दृग-तुरग' का रूपक पूर्णरूपेण घटित कर दिया है ; पर ध्यान रहे कि काव्य का प्राण भाव है, न कि रूपक-अलंकार । इसके अतिरिक्त संपूर्ण प्रबंध का तद्वत् हरण करना देख हमें किसी प्राचीन मनीषी आलोचक का यह कहना याद आता है—

कविरनुहरतिच्छायां पदमेकं पादमेकमर्द्धं वा ;
सकलप्रबन्धहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तस्मै ।

कहना न होगा कि दुलारेलाल के सोरठे के समक्ष मतिराम का यह अभेद रूपक-वाला दोहा बिहारी के दोहे से कहीं अधिक निष्प्रभ है ।

इसी भाव पर विक्रम-सतसई के रचयिता लिख गए हैं—

चपल चलाकिन सौं चलत, गनत न लाज-लगाम ;
रोके नहिं क्यों हू रहत, दृग-तुरंग गति-बाम ।

(विक्रम)

विक्रम के इस दोहे में जो 'वाम-गति दृग-तुरंग' हैं, वे बिहारी के 'मुँहजोर दृग-तुरंग' एवं दुलारेलाल के 'अरीले दृग-तुरग' तक कदापि नहीं पहुँचते । जिस भाव का वर्णन अभीष्ट था, उसकी रक्षा विक्रम के दोहे में न हो सकी । दुलारेलाल के सोरठे के 'लाज-लगाम' और 'सिख-साँटो' के सम्मुख विक्रम के 'चपल, वाम-गति दृग-तुरंग' निश्चय ही चौकड़ी भूल जाते हैं । तात्पर्य यह कि विक्रम के 'रोके नहिं क्यों हू रुकत' की अपेक्षा तो बिहारी के 'मो बस नाहिं' एवं 'ऐंचत हू चलि जाहिं' विशेष ज़ोरदार हैं, जिनका भाव मतिराम भी, पूर्ण प्रबंध अपहरण करके भी, न ला सके । केवल 'मुँहजोर होत' और 'नेकु न

गहत मरोर' कहकर रह गए हैं। दुलारेलाल के सोरठे के 'टरत न प्रिय-मुख-ठाम, अरत अरीले दृग-तुरग' में ही बिहारी के उक्त पदों के भाव से श्रेष्ठ, कोमल, पर सबल भाव आया है, और वह भी सर्वथा मौलिक—निराले ढंग से। अन्यान्य काव्य-गुणों में भी दुलारेलाल का सोरठा उक्त तीनो कवीश्वरों के दोहों से श्रेष्ठ है। सच तो यह है कि सोरठा काव्य-कला-सागर का एक बहुमूल्य, समुज्ज्वल रत्न है।

इस प्रकार परीक्षा करने पर ही दुलारे-दोहावली के इस काव्य-कोष के मुक्तक-रत्नों की गरिमा विदित होगी।

दोष-दर्शकों के प्रति

कुछ दोषदर्शक सज्जन कदाचित् यह कहेंगे कि मैंने दोहावली का अब तक गुण-गान ही किया है, उसके दोषों की ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया। इसके विषय में मेरा अपना मत तो यह है कि दुलारे-दोहावली का महत्त्व गुण-बाहुल्य से है, न कि दोष-शून्यता से। फिर दोष-दर्शी आलोचकों के मत से तो संसार में दोष-शून्य काव्य की रचना ही असंभव-सी है। वे तो कहते हैं—

ऐसौ कबित न जगत मैं, जामैं दूषन नाहिं।

अंतिम निवेदन

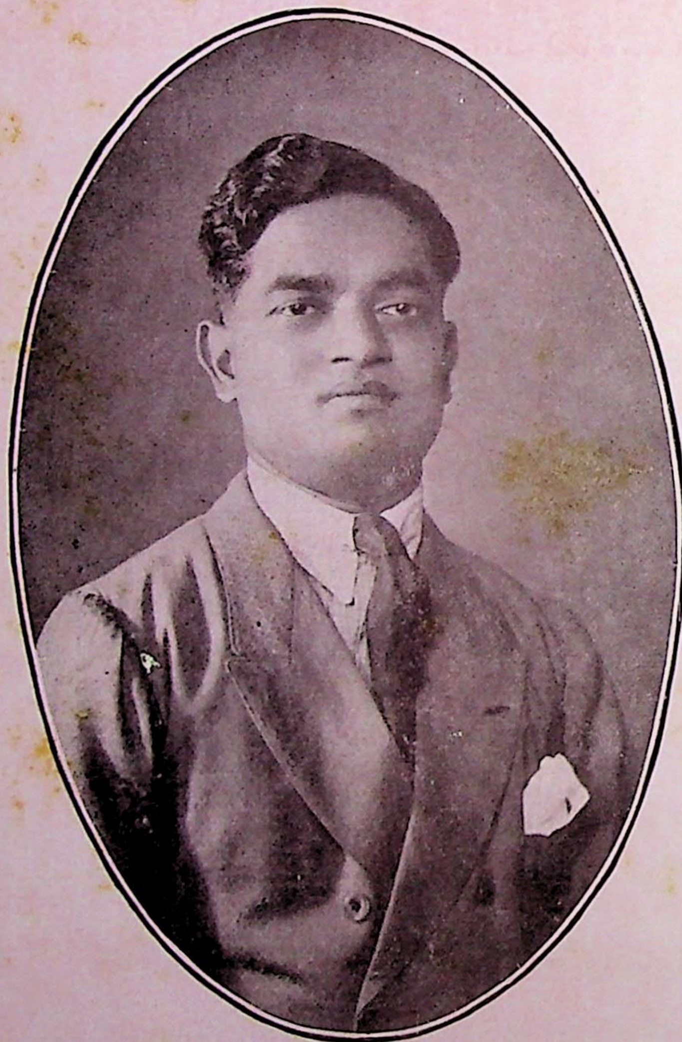
मैं अंतिम निवेदन में इतना तो अवश्य ही कहूँगा कि ब्रजभाषा में वैज्ञानिक साहित्य-शास्त्र के निर्दिष्ट किए हुए उत्कृष्ट कलात्मक ढंग से ऐसा कुछ लिख लेना, जो सदियों से संसार में अभूतपूर्व सम्मान प्राप्त किए हुए महान् कवीश्वरों की वाणी के समकक्ष ठहर सके, सचमुच में बड़ी ही जीवट और प्रखर प्रतिभा का काम है एवं सबल कल्पनापेक्षित है। इस रचना का स्थान-निर्णय करना भविष्य के हाथों में है, पर इतना तो निश्चित है कि ब्रजभाषा के वर्तमान बिहारी श्रीदुलारेलालजी की यह कृति ब्रजभाषा-साहित्य की अमर रचना है। मेरी कामना तो यह है कि भार्गवजी ब्रजभाषा के भांडार को शीघ्र ही कोई उत्कृष्ट महाकाव्य देकर हिंदी-साहित्य की गौरव-वृद्धि करें।

इस भूमिका के प्रारंभिक दोनो खंड मेरे अध्ययन का परिणाम हैं। इसके लिये मैं अपने पूर्ववर्ती लेखकों का हृदय से आभार मानता हूँ। तथास्तु।

आशा है, हिंदी-संसार अपने इस श्रेष्ठ कलाकार का समुचित समादर करेगा।

सागर (मध्यप्रदेश) } विनीत
२८।७।३४ } लोकनाथ द्विवेदी 'सिलाकारी'

चित्र-सूची



श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा और गंगा-पुस्तकमाला के संपादक और एकमात्र स्वामी)

दुलारे-दोहावली

प्रार्थना

[[illegible]]

सुमिरहु वा बिघनेस कौ
तेज - सदन मुख - सोम,
जासु रदन-दुति-किरन इक
हरति बिघन तम - तोम ।

बिघनेस = गणेशजी । तेज = (१) प्रभा, (२) ज्ञान । सोम = (१) चंद्रमा, (२) आकाश । रदन = दाँत । तम-तोम = अंधकार-राशि ।

दुलारे-दोहावली



श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा और गंगा-पुस्तकमाला के संपादक और एकमात्र स्वामी)

दुलारे-दोहावली

प्रार्थना

[एक]

सुमिरहु वा बिघनेस कौ
तेज - सदन मुख - सोम,
जासु रदन-दुति-किरन इक
हरति बिघन - तम - तोम।

बिघनेस = गणेशजी। तेज = (१) प्रभा, (२) ज्ञान। सोम = (१) चंद्रमा, (२) आकाश। रदन = दाँत। तम-तोम = अंधकार-राशि।

[दो]

श्रीराधा - बाधाहरनि-

नेहअगाधा - साथ—

निसचल नयन-निकुंज मैं

नचौ निरंतर नाथ !

निसचल = (१) अपलक, भावमय । (२) शांत, एकांत ।

[तीन]

अनु-अनु आप प्रकास करि

करत अँधेरैं बास ;

उर-निकुंज तम-पुंज मम,

रमिए रमानिवास !

अनु-अनु = अणु-अणु, ज़र्रा-ज़र्रा । करत अँधेरैं बास = दिखलाई नहीं देते, अंधकार में बसना (रहना) आपको प्रिय है । तम-पुंज = अंधकार-समूह ।

[चार]

मम तन तव रज - राज,

तव तन मम रज-रज रमत ;

करि बिधि - हरि - हर - काज

सतत सृजहु, पालहु, हरहु ।

रज = (१) धूल, (२) रजोगुण, (३) ज्योति, प्रकाश । रमत = (१) अनुरक्त हो रहा है, (२) लीन हो जाता है । व्याप्त हो जाता है । ग़ायब हो जाता है । बिधि = ब्रह्मा । हरि = विष्णु । हर = महेश । सतत = सर्वदा ।

श्रीराधा - बाधाहरनि - नेह[illegible]ा - साथ—
निहचल नयन - निकुंज मैं नचौ [illegible]रंतर नाथ !

[दो]

श्रीराधा - बाधाहरनि-
नेहअगाधा - साथ—
निश्चल नयन-निकुंज मैं
नचौ निरंतर नाथ !

निश्चल = (१) अचंचल, भावमय । (२) शांत, एकांत ।

[तीन]

अनु-अनु आप प्रकास करि
करत अँधेरैं बास ;
उर-निकुंज तम-पुंज मम,
रमिए रमानिवास !

अनु-अनु = अणु-अणु, ज़र्रा-ज़र्रा । करत अँधेरैं बास = दिखलाई नहीं देते, अंधकार में बसना (रहना) आपको प्रिय है । तम-पुंज = अंधकार-समूह ।

[चार]

मम तन तव रज - राज,
तव तन मम रज-रज रमत ;
करि बिधि - हरि - हर - काज
सतत सृजहु, पालहु, हरहु ।

) धूल, (२) रजोगुण, (३) ज्योति, प्रकाश । रमत = (१)
रहा है, (२) लीन हो जाता है । व्याप्त हो जाता है । ग़ायब हो जाता है ।
= ब्रह्मा । हरि = विष्णु । हर = महेश । सतत = सर्वदा ।

२॰]

श्रीराधा - बाधाहरनि - नेहअगाधा - साथ—
निसचल नयन - निकुंज मैं नचौ निरंतर नाथ !

[पाँच]

भाव-भाप भरि, कल्पना-
कर मन - उदधि पसारि—
कबि-रबि सुख-घन तें जगहिं
नव रस देय सँवारि ।

[छ]

कबि - सुरबैद्यनि - बीर - रस
साहित - सर उफनाय ;
न्हाय जरठ भारत - च्यवन
चट जवान ह्वै जाय ।

कबि-सुरबैद्यनि = कवि-रूप अश्विनीकुमार । भारत-च्यवन = भारत-रूपी च्यवन ऋषि ।

[सात]

कला वहै, जो आन पै
आपुनि छाँड़ै छाप,
ज्यों गंधी के गेह मैं
गंध मिलति है आप ।

आन पै = दूसरे पर । आपुनि = अपनी ।

[आठ]

नीरस कृति - तमकूप मम ;
दोस - तिमिर बिनसाय—
रस प्रकासि भारति, भरौ ,
रस - प्यासौ छकि जाय।

कृति = रचना। तमकूप = अंधा कुआँ। तिमिर = अंधकार। रस = (१) नव रस, (२) जल। भारति = सरस्वती।

प्रथम शतक

[१]

जोबन-बन बिहरत नयन-
सर सों मन-मृग मारि—
बाँधति ब्याधिनि केसिनी
केसन - पास सँवारि ।

केसन-पास = केश-पाश, बालों का समूह-रूपी जाल ।

[२]

कोप-कोकनद-अवलि अलि,
उर - सर लई लगाइ ;
पै दिखाइ मुख-चंद पिय
दई ! दई कुम्हलाइ ।

यहाँ कोप से प्रणय-कोप का तात्पर्य है, जो मान-लीला-वश होता है ; जैसे—'प्रणय-कोप मालावलि तोरी' (हरिवंश) ।

[३]

गुरुजन - लाज - लगाम,
सखि-सिख-साँटो हू निदरि—
टरत न प्रिय मुख-ठाम,
अरत अरीले दृग-तुरग ।

साँटो = चाबुक । निदरि = कुछ न गिनकर ।

[४]

कठिन बिरह ऐसी करी,
आवति जबै नगीच—
फिरि-फिरि जाति दसा लखैं
कर दृग मीचति मीच ।

फिरि-फिरि जाति = बार-बार लौट-लौट जाती है । मीच = मृत्यु ।

[५]

झपकि रही, धीरैं चलौ ;
लेहु दूरि तें प्यार ,
पीर-दब्यो दरकै न उर
चुंबन ही के भार ।

पीर=पीड़ा ।

[६]

मति-सजनी बरजी किती,
फिरति फिराए नाहिं,
नजर-नारि नाचति निलज
आँग - आँगनहिं माहिं।

मति-सजनी = मति-रूपिणी सखी। बरजी = रोकी। आँग-आँगनहिं माहिं = अंग-रूपी आँगन में।

[७]

जोबन - देस - प्रबेस करि
बुधजन हू बौरायँ;
चंचल चख चखचख चलति
चित हित-गुन बँधि जायँ।

बौरायँ = मतवाले हो जाते हैं, विवेक त्याग बैठते हैं। चख = चक्षु, आँख। चखचख = तकरार, कहा-सुनी, झगड़ा। हित-गुन = प्रेम-डोर।

[८]

तेह-मेह मुख - नभ छयौ,
चढ़यौ भौंहँ - सुरचाप;
आँसू - बूँद गिरे, दुरयौ
हास - हंस चुपचाप।

तेह = रोष। मेह = बादल। सुरचाप = इंद्र-धनुष। (महाकवि मतिराम के सुप्रसिद्ध सवैया के आधार पर)

[९]

दमकति दरपन-दरप दरि
दीपसिखा - दुति देह ;
वह दृढ़ इकदिसि दिपत, यह
मृदु दस दिसनि स-नेह ।

दरपन-दरप दरि = दर्पण का गर्व दलन करके । दीपसिखा-दुति = दीप-शिखा की प्रभावाली । स-नेह = (१) तैल-युक्त, चिकनी, (२) प्रेम-युक्त, प्रेम-भरी ।

[१०]

नाह-नेह-नभ तें अलो,
टारि रोस कौ राहु—
पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय,
तिय-कुमुदिनि बिकसाहु ।

नाह-नेह-नभ तें = प्रेम-पात्र के प्रेम-रूपी आकाश से । रोस = रिस, क्रोध । बिकसाहु = प्रफुल्लित करो ।

[११]

भ्रमी भीर, भवभामिनी
भईं चित्र - अवरेखि;
भयो भयाकुल भीष्म हू,
भीष्म भीष्म - प्रण पेखि ।

भवभामिनी = पार्वती । चित्र-अवरेखि = चित्र-लिखी । भीष्म = शंकर, महादेव । भीष्म = अत्यंत उग्र, कठोर । भीष्म = कौरवों और पांडवों के दादा भीष्म पितामह ।

हिममय परवत पर परति दिनकर-प्रभा प्रभात ;
प्रकृति-परी के उर परयौ हेम-हार लहरात ।

[[illegible]]

[illegible]

[illegible] ;

[illegible]

[illegible] ?

[illegible] (१) [illegible],
(२) [illegible]
भाव है।

[[illegible]]

[illegible] जेहि

[illegible] दिन - रात ,

ताहु [illegible] कियौ

[illegible] - दृग - पात ।

[illegible] = साम्राज्य को।

[[illegible]]

[illegible]

[illegible] ;

प्रकृति - [illegible]

[illegible]

[illegible] = प्रकृति [illegible]

[१२]

देहु देश-हित झर-सरिस
झर - झर जीवन - दान ;
चरस-सरिस रुकि-रुकि कहा
देत निपट नादान ?

झर-सरिस = निर्झर या झरने के समान। जीवन = (१) प्राण, (२) जल। इस दोहे में देश-हित में प्राण-दान देने का ज़ोरदार भाव है।

[१३]

प्रभा प्रभाकर देत जेहि
साम्राजहिं दिन - रात,
ताहू को हतप्रभ कियौ
छिन गांधी - दृग - पात।

प्रभा = प्रकाश। प्रभाकर = सूर्य। साम्राजहिं = साम्राज्य को।

[१४]

हिममय परबत पर परत
दिनकर - प्रभा प्रभात ;
प्रकृति - परी के उर परयौ
हेम - हार लहरात।

प्रकृति-परी = प्रकृति-रूपिणी अप्सरा। हेम-हार = स्वर्णमाल।

[१५]

ऊँच - जनम नरवर हरत
नित नमि-नमि पर - पीर ;
सींचत सिखरी सौं निकसि
निमन बहत नद तीर ।

नरवर = श्रेष्ठ पुरुष । सिखरी = पर्वत ।

[१६]

संतत सहज़ सुभाव सौं
सुजन सबै सनमानि——
सुधा-सरस सींचत स्रवन
सनी - सनेह सुबानि ।

[१७]

तेज तुरंग तुरंग तैं
इतौ कि दुसतर माप ;
वह मारैं आगै बढ़ै,
यह भागै द्रुत आप ।

तुरंग = मन । तुरंग = घोड़ा । दुसतर = दुस्तर, कठिन । द्रुत = शीघ्र ।

कब तैं लै मन-ठीकरौ, खरी भिखारिन द्वार ;
रूप-जोति कन दै हरौ मति-तम-तोम अपार ।

[१८]

इड़ा-गंग, पिंगला - जमुन
सुखमन - सरसुति - संग—
मिलत उठति बहु अरथमय,
अनुपम सबद - तरंग ।

सुखमन = सुषुम्ना । इस दोहे में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के मेल का गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम से मिलान किया गया है ।

[१९]

विषय-बात मन-नाव कौं
भव-नद देति बहाइ ;
पकरु नाव - पतवार दृढ़,
चट लगिहै तट आइ ।

नाव = नौका । नाव = नाम ।

[२०]

कब तैं, लै मन-ठीकरो,
खरी भिखारिन द्वार ;
रूप - ज्योति कन दै हरो
मति - तम - तोम अपार ।

ठीकरो = भिक्षा-पात्र ।

[illegible], करी भिखारिनि द्वार ;
[illegible] हरी मति-तम-तोम अपार ।

[१८]

इड़ा-गंग, पिंगला - जमुन
सुखमन - सरसुति - संग—
मिलत उठति बहु अरथमय,
अनुपम सबद - तरंग।

सुखमन = सुषुम्ना। इस दोहे में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के मेल का गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम से मिलान किया गया है।

[१९]

बिषय-बात मन-नाव कौं
भव-नद देति बहाइ;
पकरु नाव - पतवार दृढ़,
चट लगिहै तट आइ।

नाव = नौका। नाव = नाम।

[२०]

कब तैं, लै मन-ठीकरो,
खरी भिखारिन द्वार;
रूप - ज्योति कन दै हरो
मति - तम - तोम अपार।

ठीकरो = भिक्षा-पात्र।

[२१]

नख-सिख-देस लग्यौ चढ़न
इत जोबन - नरनाह,
पदनि - चपलई उत लई
जनु दृग-दुरग पनाह ।

[२२]

तचत बिरह-रबि उर-उदधि,
उठत बिकलता - मेह,
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि,
बरसत बहुरि अछेह ।

[२३]

भरि-भरि दृग-तारक सलिल
उर पर ढरि-ढरि जात ;
टूटि-टूटि तारक गगन
गिरि पर गिरि-गिरि जात ।

दृग-तारक = आँखों की पुतलियों में । तारक = तारे, नक्षत्र ।

[२४]

नई सिकारिन - नारि,
चितवन - बंसी फेंकिकै,
चट घूँघट - पट डारि,
चंचल चित-झख लै चली।

चित-झख = चित्त-रूपी मत्स्य । घूँघट-पट = घूँघट-पट-रूपी वस्त्र । यहाँ पट श्लिष्ट है ।

[२५]

चात गई रँग चीत-पट
चल चख-कूँची फेरि ;
चटक मिटाए हू बढ़ति,
कढ़ति न चतुर चितेरि ।

रँग = (१) प्रेम, (२) रंग । चीत = (१) चित्त, (२) चित्र ।

[२६]

चित-चकमक पै चोट दै,
चितवन - लोह चलाइ—
हित-आगी हिय-सूत मैं
ललना गई लगाइ ।

[२७]

खिलैं अनेक सुभग सुमन,
सुमन न नेक पत्याय ;
अमल कमल ही पै मधुप
फिरि-फिरि फिरि मँडराय ।

[२८]

मृदु हँसि, पुनि-पुनि बोलि प्रिय,
रखि रूखी रुख बाम—
नेह उपै, पालै, हरै
करि बिधि-हरि-हर-काम ।

रूखी रुख = उपेक्षा का भाव । उपै = उत्पन्न करती है ।

[२९]

पुर तैं पलटे पीय की
पर-तिय-प्रीतिहिं पेखि—
बिछुरन-दुख सौं मिलन-सुख
दाहक भयौ बिसेखि ।

पेखि = देखकर । दाहक = जलानेवाला । बिसेखि = विशेष करके ।

[३०]

कढ़ि सरतें द्रुत दै गई
दृगनि देह-दुति चौंध ;
बरसत बादर-बीच जनु
गई बीजुरी कौंध ।

द्रुत = शीघ्र, जल्दी ।

[३१]

लै सबकौ उर-रंग,
सोखत, लौटावत नहीं ;
कपटी, कान्ह, त्रिभंग—
कारे तुम तातें भए !

रंग = प्रेम-रूपी रंग की प्रकाश-किरण । कान्ह (सं० कृष्ण) = श्रीकृष्ण, श्याम शरीरधारी ।

[३२]

सोहत सतगुन-सुरँग सौं
सुचि स्वराज-सुरचाप—
सुख, सेना, सिच्छा, बनिज,
कृषि, धन, काज-कलाप ।

सुचि = पवित्र । स्वराज-सुरचाप = स्वराज्य-रूपी इंद्र-धनुष । इस दोहे में, तृतीय और चतुर्थ चरण में, इंद्र-धनुष में झलकनेवाले सात रंग गिनाए गए हैं ।

[३३]

लखिकै भारत-दीप कौं
हतप्रभ-सो असहाय ;
जीवन दै ताकौं तुरत
गंधी दियौ जगाय ।

जीवन = (१) तेल, (२) नवीन स्फूर्ति । गंधी = (१) अत्तार, (२) गांधीजी ।

[३४]

वीर धीर सहि तीर-झर
कटक काटि कढ़ि जात ;
बादल-दल बरसत बिकट,
बायुयान बढ़ि जात ।

[३५]

नखत-मुकत आँगन-गगन
भरति प्रकृति - मा रात,
बाल हंस चुपचाप चट
चमक - चोंच चुगि जात ।

नखत-मुकत = नक्षत्र-रूपी मोतियों से । बाल हंस = (१) प्रातःकाल का सूर्य, (२) हंस का बच्चा ।

[३३]

लखिकै भारत-दोप कौं

हतप्रभ-सो असहाय ;

जीवन दै ताकौं तुरत

गंधी दियौ जगाय ।

जीवन = (१) तेल, (२) नवीन स्फूर्ति । गंधी = (१) अत्तार, (२) गांधीजी ।

[३४]

बीर धीर सहि तीर-झर

कटक काटि कढ़ि जात ;

बादल-दल बरसत बिकट,

बायुयान बढ़ि जात ।

[३५]

नखत-मुकत आँगन-गगन

भरति प्रकृति - मा त,

बाल हंस चुपचाप चट

चमक - चोंच चुगि जा ।

[illegible] = नखत-रूपी मोतियों से । बाल [illegible] = (१) [illegible] के सूर्य, (२) हंस का बच्चा ।

नखत-मुकत आँगन-गगन भरति प्रकृति-मा रात,
बाल हंस चुपचाप चट चमक-चोंच चुगि जात।

[३६]

सबै सुखन कौ सोत,
सुजग, निरोग सरीर है ;
जगत - जलधि कौ पोत,
परमारथ - पथ - रथ यहै ।

सोत = स्रोत, चश्मा । जलधि = समुद्र । पोत = जहाज़ ।

[३७]

रही अछूतोद्धार - नद
छुआछूत - तिय डूबि ;
सास्त्रन कौ तिनकौ गहति
क्रांति - भँवर सौं ऊबि ।

[३८]

तलफत दृग-पट आय,
तन-पिंजर मैं बिकल है ;
उरि न प्रान-खग जाय,
प्रभु ! राखौ दै दरस-फल ।

[३९]

जग-नद मैं तेरी परी
देह - नाव मँझधार ;
मन-मलाह जो बस करै,
निहचै उतरै पार।

निहचै = निश्चय-पूर्वक।

[४०]

आयु-रात जग-पलँग परि,
जीवन - सपन - भुलाइ,
आतम-ज्ञान बिहाइ तैं
मैं - तूँ ही बरराइ।

आयु-रात = आयुष्य (अवस्था)-रूपिणी रात्रि। बिहाइ = त्यागकर।

[४१]

मनौ कहे - से देत,
चखन-चवाई चपल ह्वै—
तिय - तन - बन - संकेत,
लरिकाई - जोबन मिले।

चखन = नेत्र। तिय-तन-बन-संकेत = नारी-शरीर-रूपी वन के संकेत-स्थल में। लरिकाई-जोबन = बाल्यावस्था और यौवन। इस दोहे में कवि ने बाल्यावस्था और यौवन को नायिका और नायक कथन कर उनका नारी-तन-रूप वन के संकेत-स्थल में मिलन कराया है, जिसकी चुगली खानेवाले नेत्र हैं।

[४२]

तन - उपबन सहिहै कहा
बिछुरन - झंझाबात,
उरयौ जात उर - तरु जबै
चलिबे ही की बात ?

तन-उपबन = शरीर-रूपी बाग़। बात = श्लिष्ट पद है। इससे बात (चर्चा)-रूपी वायु का तात्पर्य है।

[४३]

मुकुता सुख-अँसुआ भए,
भयौ ताग उर - प्यार ;
मन - सूई तैं गूँथि जनु
देति हार उपहार।

ताग = धागा।

[४४]

मैन - ऐन तव नैन,
सोहैं सरसिज - से सुभग ;
ए बिकसित दिन - रैन,
वे बिकसित बस दिबस हीं !

मैन-ऐन = कामदेव के स्थान। सरसिज = कमल।

[४५]

कैसे बचिहै लाज - तरु ?
निपट निगोड़े नैन !
चवा भई चहुँ दिसि चलति
चारि चवाइन - सैन ।

निगोड़े = पग-विहीन, एक प्रकार की गाली । चवा = चारो ओर से चलनेवाली हवा ।

[४६]

कहा भयौ पिय कौं, कहत
मो मुख मुकुर - उदोत ?
यह तौ मुख-छबि-कर लहत
आप सुदीपित होत !

[४७]

प्यारी गोरोचन - तिलक
दियौ लाल के भाल ;
तिय-दृग-गो रोचन लग्यौ,
किए सौत-दृग लाल ।

[४८]

लंक लचाइ, नचाइ दृग,
पग उँचाइ, भरि चाइ ;
सिर धरि गागरि डगर महँ
नागरि नाचति जाइ ।

भरि चाइ = उमंग में भरकर ।

[४९]

गंगा - जमुना - सरसुती,
बचपन - जोबन - रूप—
तिय-तिरबेनी मुकत किय
मति-जग सों बुध - भूप ।

मति-जग = मति-रूपी दुनिया । बुध-भूप = बुद्धिमानों के शिरोमणि, बुद्धिमान् राजा ।

[५०]

आवन-बात बही जु धन,
नयन सजन लिय मूँदि ;
नेह - गही वह मनचही
रही मही नख खूँदि ।

आवन-बात = आने की बात-रूपी वायु में । धन = नारी, वधू । मनचही = प्यारी ।

[५१]

सिव - गांधी दोई भए
बाँके मा के लाल ;
उन काटे हिंदून - दुख,
इन जग-दृग-तम-जाल ।

सिव = शिवाजी । इस दोहे में शिवाजी और गांधीजी की तुलना की गई है ।

[५२]

यौरप - दुःशासन निठुर
खींचत लखि निधि-चीर—
जन्मभूमि - कृष्णा करी
'मोहन' अभय - शरीर ।

निधि - चीर = धन - रूपी वस्त्र । जन्मभूमि - कृष्णा = जन्मभूमि-रूपिणी द्रौपदी । मोहन = श्लिष्ट पद है । इससे श्रीकृष्ण और मोहन-दास गांधी, दोनो अर्थ निकलते हैं ।

[५३]

गंधी गंधी दुहुन के
पास उचित है बास ;
सुमन-बास उन-पास, त्यौं
सुमन - बास इन - पास ।

गंधी = अत्तार । गंधी = महात्मा गांधी । सुमन-बास = पुष्पों की सुगंध, इत्र । सुमन-बास = अच्छे मन का वास, विद्वानों या देवतों का निवास ।

[५४]

जनु जु रात - बिछुरन रहे
नलिनी - तिय - मुख छाइ,
वेई ओस - आँसू करनि
पोंछत रबि - पिय आइ।

नलिनी-तिय-मुख = कमलिनी-रूपिणी नारी के मुख पर। ओस-आँसू = ओस-कण-रूपी अश्रु-दल। करनि = किरण-रूपी हाथों से। रबि-पिय = सूर्य-रूप पति।

[५५]

नियमित नर निज काज-हित
समय नियत करि लेय;
रजनी ही मैं गंध ज्यौं
रजनी - गंधा देय।

नियमित नर = नियमानुकूल चलनेवाला व्यवस्थित मनुष्य। रजनी-गंधा = वह बेलि, जिसके पुष्प रात्रि में ही सुगंध बिखेरते हैं।

[५६]

मानस-खस-टाटी सरस
हरि कलि-ग्रीसम-पीर—
त्रयतापन-लूअनि करति
त्रयबिधि, सुखद समीर।

मानस = महाकवि तुलसी-कृत रामचरित-मानस। त्रयतापन = दैहिक, दैविक एवं भौतिक-नामक तीन तापों की। त्रयबिधि, सुखद समीर = शीतल, मंद और सुगंध समीर, जो तन, मन, प्राणों को सुखद है।

[५७]

सीत-घाम-लू-दुख सहत,
तऊ न टूटत तार ;
झरत निरंतर झर-सरिस,
सोइ सनेह सुचि, सार ।

तऊ = तो भी । झर = झरना । सुचि = पवित्र ।

[५८]

जनम दियौ, पाल्यौ, तऊ
बिसरायौ जन नाथ !
परयौ पुहुप मसल्यौ मनौ
मधु ही के मृदु हाथ ।

जन = सेवक । नाथ = स्वामी, रक्षक । पुहुप = फूल । मधु = वसंत । मृदु = मुलायम ।

[५६]

सत-इसटिक जग-फील्ड लै
जीवन - हाकी खेलि ;
वा अनंत के गोल मैं
आतम - बालहिं मेलि ।

इसटिक = हॉकी खेलने का डंडा । फील्ड = मैदान । गोल = वह स्थान, जहाँ गेंद मेल देने से विजय प्राप्त होती है । बालहिं = गेंद को ।

[६०]

ग्राह-गहत गजराज की
गरज गहत ब्रजराज—
भजे गरीबनिवाज कौ
बिरद बचावन - काज ।

[६१]

नई लगन किय गेह,
अली, लली के ललित तन ;
सूखति जाति अछेह,
तरु ज्यौं अंबरबेलि सौं ।

अछेह = लगातार । अंबरबेलि = आकाशवल्ली, अमरबेल ।

[६२]

उर-धरकनि-धुनि माहिं सुनि
पिय-पग-प्रतिधुनि कान—
नस-नस तैं नैननि उमहि
आए उतसुक प्रान ।

उमहि आए = उमड़कर आए ।

[६३]

हियौ-नेह दै पिय ! दियौ
जीवन - दियौ जगाइ ;
किंचित सिंचित राखियौ,
ह्वै सूनो न बुताइ ।

नेह = (१) प्रेम, (२) तैल । जीवन-दियौ = जीवन का दीपक ।

[६४]

झपटि लरत, गिरि-गिरि परत,
पुनि उठि-उठि गिरि जात ;
चख-भट निधरक हित-समर
करत परसपर घात ।

हित-समर = प्रेम-युद्ध ।

[६५]

लरैं नैन, पलकैं गिरैं,
चित तरपैं दिन-रात ,
उठै सूल उर, प्रीति-पुर
अजब अनोखी बात ।

लरैं नैन, पलकैं गिरैं, चित तरपैं दिन - रात,
उठै सूल उर, प्रीति-पुर अजब अनोखी बात ।

[६६]

चख-झख तव दृग-सर-सरस-
बूड़ि, बहुरि उतराय—
बेंदी-छटके मैं छटकि
अटकि जात निरुपाय।

छटका = मछलियों के फँसाने का एक गड्ढा, जो दो जलाशयों के बीच तंग मेड़ पर खोदा जाता है। मछलियाँ एक जलाशय से दूसरे जलाशय में जाने के लिये कूदती हैं, और इसी गड्ढे में गिर जाती हैं। छटकि = छूटकर। निरुपाय = लाचार।

[६७]

साजन सावन - सूर - सम
और कछू देखैं न;
तुव दृग-दुति-कर-निकर किय
अंधबिंदुमय नैन।

साजन = प्यारा, पति। कर-निकर = किरणों का समूह। अंध-बिंदु = आँख के भीतरी पटल पर का वह स्थान, जो प्रकाश को ग्रहण नहीं करता, और जिसके सामने पड़ी हुई वस्तु दिखलाई नहीं देती।

[६८]

रमनी - रतननि हीर यह,
यह साँचो ही सोर;
जेती दमकति देह - दुति,
तेतौ हियौ कठोर।

[६९]

हिय उलही तिय पेखि पिय,
बिलखी दुलही देखि ;
सुखनभ-दुखधर-बीच की
मन-त्रिसंकु-गति लेखि ।

उलही = प्रसन्न हुई । सुखनभ-दुखधर-बीच की = सुख-रूपी आकाश और दुःख-रूपी धरती के मध्य की । मन-त्रिसंकु-गति = मन की त्रिशंकु-जैसी गति । त्रिशंकु = सूर्यवंश के वह पौराणिक नरेश, जिन्हें विश्वामित्र ने सदेह स्वर्ग पहुँचाने का प्रयत्न किया, और इंद्र ने पृथ्वी पर पटक दिया । दोनो शक्तियों के एक दूसरे के विरुद्ध प्रभाव से बेचारे बीच ही में लटक गए ।

[७०]

चख - तुरंग माते इते
छिन छाके छबि-भाँग ;
सुमति - छाँद छाँदहुँ इतै,
उतै सु भरत छलाँग ।

माते = मदोन्मत्त हो गए । छाँद = रस्सी से । छाँदना = सटाकर ऐसे पैर बाँधना कि दूर तक न भाग सके ।

[७१]

लेत - देत संदेस सब,
सुनि न सकत कछु कोय ;
बिना तार कौ तार जनु
कियौ दृगनु तुम दोय ।

इस दोहे में नेत्रों द्वारा बेतार का तार बनाया गया है ।

[७२]

गांधी - गुरु तैं ज्ञान लै,
चरखा - अनहद - जोर---
भारत सबद - तरंग पै
बहत मुकति की ओर।

भारत = (१) ज्ञान से रत, (२) भारत-देश। मुकति = (१) मोक्ष, (२) स्वाधीनता।

[७३]

जीवन - धन - जय - चाह,
धन कंकन-बंधन करति ;
उत तन रन - उतसाह,
इत बिछुरन की पीर मन।

धन = स्त्री, पत्नी।

[७४]

हिंदू - जवन प्रयाग मैं
गंग - जमुन - सम धाय---
मिले, छिपी स्वाधीनता
सरसुति - सी सरसाइ।

सरसुति = सरस्वती। यह दोहा प्रयाग में हिंदू-मुसलिम-एकता के संबंध में होनेवाली कान्फ्रेंस के समय लिखा गया था। इसमें छिपी हुई स्वाधीनता को सरस्वती के समान 'सरसाने' में अच्छा कौशल है।

[७५]

दिन-नायक ज्यों-ज्यों बढ़त
कर अनुराग पसारि,
त्यों-त्यों लजि सिमटति, हटति
निसि - नवनारि निहारि ।

दिन-नायक = सूर्य-रूपी नायक । बढ़त = आकाश में ऊँचे चढ़ता है, आगे बढ़ता है । कर = (१) किरण, (२) हाथ । पसारि = फैलाकर । निसि-नवनारि = रात्रि-रूपिणी नव-बाला ।

[७६]

होत निरगुनी हू गुनी
बसैं गुनी के पास ;
करत लुएँ खस सलिलमय
सीतल, सुखद, सुबास ।

निरगुनी = गुण-हीन ।

[७७]

कलिजुग हो मैं मैं लखी
अति अचरजमय बात—
होत पतित-पावन पतित,
छुवत पतित जब गात ।

[७८]

अगम सिंधु जिमि सीप-उर
मुकता करत निवास,
तिमिर-तोम तिमि हृदय बसि
करु हृदयेस ! प्रकास ।

[७९]

गई रात, साथी चले,
भई दीप - दुति मंद,
जोबन-मदिरा पी चुक्यौ,
अजहुँ चेत मति - मंद !

[८०]

जगि-जगि, बुझि-बुझि जगत मैं
जुगनू की गति होति;
कब अनंत परकास सौं
जगिहै जीवन - जोति ?

इस दोहे में अनंत ज्योति से संयोग प्राप्त करने को उत्सुक, पुनः-पुनः जन्म-मरणशील जीवात्मा की वेदना का वर्णन है ।

[८१]

नव-तन-देसहिं जीति जनु
पटु जोबन-नृपराज—
खड़े किए कुच-कोट जुग
आपुन रच्छा - काज।

[८२]

नयन - आतसी काँच परि
छबि-रबि-कर अवदात—
झुलसायौ उर-कागदहिं,
उरयौ साँस-सँग जात।

आतसी काँच = आतिशी शीशा। अवदात = श्वेत, सुंदर।
साँस = (१) श्वास, (२) हवा।

[८३]

दोसनि डारी धूरि हौं,
चाटी धूरि अथोर,
देह धूरि जापै करी,
धूरि उड़ावत मोर।

दोसनि = दोषों पर। धूरि डारी = छुपाया, भुलाया। धूरि चाटी = अनुनय-विनय की। देह धूरि करी = शरीर को धूल में मिला दिया। धूरि उड़ावत मोर = मेरा उपहास करता है।

[८४]

बिंब देखिबे कौं कहा
झुकति प्रपातहिं - तीर ?
भोरी, तुव मुख-छबि लखैं
होत बिकल, चल नीर !

प्रपातहिं-तीर = झरने के तीर पर। भोरी = भोली।

[८५]

उर - कुरंड - कन देहु
बिरह - ताप - तापित तुरत,
मुरछित कंचन - देहु
जिला देहु पुनि, लेहु पुन।

कुरंड = वह मानिक-रेत, जिससे सुनार सोने पर जिला देते हैं। बिरह-ताप = वियोगाग्नि। देहु = शरीर। जिला देहु = (१) जिला दो, आबदार बना दो, (२) सजीव करो। पुनि = फिर। पुन = पुण्य।

[८६]

हृदय कूप, मन रहँट, स्मृति-
माल माल, रस राग,
बिरह बृषभ, बरहा नयन,
क्यों न सिंचै स्मर-बाग ?

बरहा = सिंचाई के लिये बनी हुई नाली। माल = घट-माला। स्मर-बाग = काम-रूपी उपवन।

[८७]

नजर-तीर तैं नैन-पुर
रच्छित राखन - हेत--
जनु काजर-प्राचीर पिय--
तिय - तन-भू-पति--देत ।

काजर-प्राचीर = काजल का परकोटा ।

[८८]

उत उगलत ज्वालामुखी
जब दुरबचननि आग,
उठत हृदय - भू - कंप इत,
ढहत सुदृढ़ गढ़ - राग ।

[८६]

बस न हमारो, करहु बस,
बस न लेहु प्रिय लाज ;
बसन देहु, ब्रज मैं हमैं
बसन देहु ब्रजराज !

(देव कवि के कवित्त के आधार पर)

बस न = वश नहीं । करहु बस = (यह लीला) समाप्त करो ।
बसन देहु = वस्त्र दे दो । बसन देहु = निवास करने दो ।

[६०]

भारत - सरहिं सरोजिनी
गांधी - पूरब - ओर--
तकि सोचति--'ह्वैहै कबै
प्रिय स्वराज - रबि - भोर ?'

सरोजिनी = श्लिष्ट पद है, जिससे भारत की प्रसिद्ध नेत्री श्रीसरोजिनी नायडू और कमलिनी दोनो का अर्थ निकलता है। पूरब = पूर्व-दिशा।

[६१]

दुष्ट-दनुज-दल-दलन कौं
धरे तीक्ष्ण तरवार,
देश - शक्ति दुर्गावती
दुर्गा कौ अवतार।

दुर्गावती = गढ़ामंडला की वीर नारी दुर्गावती, जिसने अकबर बादशाह के कड़ामानकपुर के सूबेदार आसफ़ख़ाँ से लोम-हर्षण संग्राम किया था।

[६२]

पर - राष्ट्रन - अरि - चोट तैं
धन - स्वतंत्रता - कोट--
तट - कर - परकोटा बिकट
राखत अगम, अगोट।

धन - स्वतंत्रता - कोट = आर्थिक स्वातंत्र्य-रूपी क़िला। तट-कर-परकोटा = बाहर से आनेवाले माल (आयात) पर राज्य द्वारा लगाया गया कर-रूप परकोटा। अगोट राखत = छिपा रखता है।

[६३]

लरिकाईं - ऊषा दुरी,
झलक्यौ जोबन - प्रात,
छई नई छबि - रबि - प्रभा
नारि - प्रकृति के गात ।

[६४]

रबि-पुट तैं लै बर बरन,
कर - कूँचीन चलाइ,
प्रकृति - चितेरी रचति पटु
नभ - पटु साँझ सुभाइ ।

रबि-पुट = सूर्य-रूपी गोल पात्र, जिसमें रंग भरा हुआ है । बर बरन = श्रेष्ठ वर्ण या रंग । कर-कूँचीन = किरणों की कूँचियों को । पटु = प्रवीण । नभ-पटु = आकाश के पट पर । सुभाइ (१) स्वभाव से, (२) उत्तम भाव से ।

[६५]

संगत के अनुसार ही
सबकौ बनत सुभाइ ;
साँभर मैं जो कछु परै,
लवन - रूप ह्वै जाइ ।

सुभाइ = स्वभाव । साँभर = राजपूताने की एक झील, जहाँ से साँभर-नामक नमक निकलता है । लवन = नमक ।

[६३]

लरिकाई - ऊषा दुरी,
झलक्यौ जोवन - प्रात,
लई नई छबि - रबि - प्रभा
नारि - प्रकृति के गात।

[६४]

[illegible] मैं है बर बरन,
[illegible] - कुंचीन चलाइ,
[illegible] - चितेरी रचति पटु
[illegible] - पटु माँझ सुभाइ।

[illegible] भरा हुआ है। बर [illegible] की कूँचियों को। पटु = [illegible] सुभाइ = (१) स्वभाव से, [illegible]

[६५]

[illegible] के अनुसार ही
सबकौ बनत सुभाइ;
साँभर मैं जो कछु परै,
लवन - रूप ह्वै जाइ।

सुभाइ = स्वभाव। साँभर = राजपूताने की एक झील, [illegible] साँभर-नामक नमक निकलता है। लवन = नमक।

लरिकाई - ऊषा दुरी,
झलक्यौ जोबन-प्रात,
छई नई छबि - रबि - प्रभा
नारि-प्रकृति के गात ।

[६६]

सतसैया के दोहरे
चुने जौहरी - हीर—
जोति - धरे, तीछन, खरे,
अरथ - भरे गंभीर।

हीर = हीरा। जोति = (१) ज्ञान, (२) प्रभा, चमक। तीछन (तीक्ष्ण) = (१) तेज़, बुद्धि-युक्त, प्रतिभा-पूर्ण, (२) तेज़ नोकवाला। खरे = (१) विशुद्ध, (२) चोखे, बढ़िया। अर्थ = (१) व्यंग्यादि काव्यार्थ, (२) धन। गंभीर = (१) गहरा, (२) घना, प्रचुर।

[६७]

हरिजन तैं चाहौ भजन,
तौ हरि - भजन फिज़ूल,
जन द्वारा ही करत हैं
राजन मिलन कबूल।

चाहौ भजन = भागना चाहो।

[६८]

नीच मीच कौं मत कहै,
जनि उर करै उदास;
अंतरंगिनी प्रिय अली
पहुँचावति पिय - पास।

अंतरंगिनी प्रिय अली = अंतरंग-भेद जाननेवाली प्यारी सखी।

[९९]

जनम - मरन - करियन-जुरी
जीवन - लरी अपार--
प्रकृति-नटी कसि, लसि रही
रिझै रिझावनहार ।

जनम-मरन-करियन-जुरी = जन्म-मरण की कड़ियों से जुड़ी । जीवन-लरी अपार = (१) अनंत जीवों की लड़ी । (२) अनंत जीवनों (योनियों) की लड़ी ।

[१००]

पट, मुरली, माला, मुकट
धरि कटि, कर, उर, भाल--
मंद - मंद हँसि बसि हियैं
नंद दुलारे लाल ।

(बिहारी के आधार पर)

दूसरा शतक

[१०१]

सुख-सँदेस की ज्वार चढ़ि
आई सखी सुजान,
लगी सिंधु-आनंद मैं
धन बूड़न - उतरान।

[१०२]

उर - पुर अरि - परनारि तैं
रच्छित राखौ लाल !
नतरु बियोग - कृसानु मैं
जौहर ह्वैहै बाल।

अरि-परनारि = शत्रु-रूपिणी अन्य नारी । कृसानु = अग्नि ।
जौहर ह्वैहै = चिता प्रज्वलित कर जल मरेगी।

[१०३]

मन-कानन मैं धँसि कुटिल,
काननचारी नैन—
मारत मति-मृगि मृदुल, पै
पोसत मृगपति - मैन !

मन-कानन = मन-रूपी वन। काननचारी = (१) वन में विचरण करनेवाले। (२) कानों तक फैले हुए। मति-मृगि = मति-रूपिणी मृगी।

[१०४]

कियौ कोप चित-चोप सौं,
आई आनन ओप,
भई लोप पै मिलत चख,
लियौ हियौ हित छोप।

चोप = इच्छा, चाव। ओप = आभा। छोप लियौ = आच्छादित कर लिया।

[१०५]

छन-छन छबि की छाक सौं
छलिया, छैल ! छकाय—
छँटे-छँटे अब फिरत क्यौं
मोह - मूरछा छाय ?

छाक = नशा। छँटे-छँटे फिरना = दूर-दूर रहना। कुछ संबंध या लगाव न रखना।

[१०३]

मन-कानन मैं धँसि कुटिल,
काननचारी नैन—
मारत मति-मृगि मृदुल, पै
पोसत मृगपति - मैन !

मन-कानन = मन-रूपी वन । काननचारी = (१) वन में विचरण करनेवाले । (२) कानों तक फैले हुए । मति-मृगि = मति-रूपिणी मृगी ।

[१०४]

किन्यौ कोप चित-चोप सौं,
आई आनन ओप,
भई लोप पै मिलत चख,
छिनौ छियौ हित ओप ।

चोप = इच्छा, चाव । ओप = आभा । ओप छियौ = आच्छादित कर लिया ।

[१०५]

छन-छन छबि की छाक सौं
छलिया, छैल ! छकाय—
छँटे-छँटे अब फिरत क्यौं
मोह - मूरछा छाय ?

छाक = नशा । छँटे-छँटे फिरना = दूर-दूर रहना । कुछ संबंध या लगाव न रखना ।

मन - कानन मैं धँसि कुटिल, काननचारी नैन—
भारत मति - मृगि मृदुल, पै पोसत मृगपति - मैन ।

[१०६]

दंपति - हित - डोरी खरी
परी चपल चित-डार,
चार चखन - पटरी अरी,
झोंकनि झूलत मार।

मार = काम।

[१०७]

बिरहिनि-जोगिनि कौ करै
जो साजन सौं जोग,
है समाधि हू सौं सरस
नींद, न नींदन-जोग।

जोग = योग, मिलन। जोग = योग्य, लायक़।

[१०८]

राग-राग रागत रुचिर
पिय हिय - तंत्री - संग ;
सजनी री, नीरस निरी,
जमत न तो पै रंग।

राग-राग = अनुराग का राग।

[१०९]

ध्यान धरन दै, धर अधर
धीरैं ही अधरानि ;
उमड़ि उठै उर-पीर जनि
प्रिय - चुंबन पहचानि ।

[११०]

हौं सखि, सीसी आतसी,
कहति साँच ही साँच ;
बिरह - आँच खाई इती,
तऊ न आई आँच !

[१११]

ततछन पुरखन-धन दियौ
देस-प्रेम की राह ;
त्याग-निसेनी चढ़ि चढ़े
चित - चित भामाशाह !

[११२]

सती-सिरोमनि 'बा' तुही
गांधी - जीवन - सार ;
तव अंगनि अनु-अनु बन्यौं
सती - सुगुन - आगार ।

'बा' = श्रीमती सौभाग्यवती कस्तूर 'बा' गांधी, महात्मा मोहनदास-कर्मचंद गांधी की धर्मपत्नी ।

[११३]

ईसाई, हिंदू, जवन,
ईसा, राम, रहीम,
बैबिल, बेद, कुरान मैं
जगमग एक असीम ।

जवन = यवन, मुसलमान । बैबिल = बाइबिल । असीम = अनंत, परमात्मा ।

[११४]

लखि जग-पंथी अति थकित,
संझा - बाँह पसारि—
तम-सरायँ मैं दै रही
छाँहँ छपा - भटियारि ।

पंथी = यात्री । संझा-बाँह पसारि = संध्या-रूपिणी बाहें फैला-कर । तम-सरायँ = अंधकार-रूपी सराय । छाँहँ = आश्रय, छाया । छपा-भटियारि = रात्रि-रूपिणी भटियारी ।

[११५]

बिन बिबेक कौ मन भयौ
बिन लंगर कौ पोत ;
भ्रमत फिरत भव-सिंधु मैं,
छिन न कहूँ थिर होत !

पोत = नाव, जहाज़ ।

[११६]

हिंदी-द्रोही, उचित ही
तुव अँगरेजी - नेह,
दई निरदई पै दई
नाहक हिंदी देह !

हिंदी = हिंदी-भाषा। दई निरदई = निर्दय ब्रह्मा। हिंदी = हिंदुस्थानी।

[११७]

होत सयान अयान हू
जुरि गुनवान - समीप;
जारत दीप अनेक ज्यों
जरत एक ही दीप ।

जरत = जलता हुआ ।

[११८]

हृदय-सून तैं असत-तम
हरौ, करौ जौ सून,
सून-भरन के हित झपटि
झट आवेगौ सून ।

हृदय-सून = हृदयाकाश, घटाकाश । असत-तम = असत माया का अंधकार । सून = शून्य, एकांत, ख़ाली । सून-भरन के हित = रिक्त स्थान (Vaccum) को भरने के लिये । सून = शून्य, पूर्ण, परमात्मा ।

[११९]

दरसनीय सुनि देस वह,
जहँ दुति-ही-दुति होइ,
हौं बौरो हेरन गयौ,
बैठ्यौ निज दुति खोइ ।

बौरो = पागल । हेरन = (१) खोजने, (२) देखने ।

[१२०]

एक जोति जग जगमगै
जीव - जीव के जीय ;
बिजुरी बिजुरीघर-निकसि
ज्यों जारति पुर-दीय ।

दीय = दीप, दिए ।

[१२१]

बरजोरी गोरी गही
गोकुल - गैल गुपाल ;
दधि ढरक्यौ, धरक्यौ हियौ,
सरक्यौ घूँघट भाल ।

[१२२]

रस - रबि - बस दोऊन के
जे हिलि-मिलि खिलि जात,
वेई तुव मुख-चंद लखि
चख - जलजात लजात ।

रस = प्रेम । चख-जलजात = नेत्र-कमल ।

[१२३]

सुमन चुनति, आँचर भरति,
गुहति मनोहर माल,
बिलसति बनदेवी - सरिस
बन-बिच बिचरति बाल ।

जनु नवबय-नृप-मदन-भट तिय-तन-घर-जय-हेतु—
हनत जु सर, उर-पुर उठत उरज-समरपन-केतु ।

[१२४]

नेह-तल्यौ छबि-लपट तैं
भयौ कुरकुरौ काँच ;
तरकि जाइगौ तुरत उर
लगैं बिरह की आँच ।

[१२५]

तुलसी-सी जिय पावनी,
तिय कुलसील-निधान—
हिय-हुलसी तुलसी-तरहिं
पूजति, धरि पिय ध्यान ;

तुलसी = इस सती का वैष्णवों में बड़ा मान है। पुराणों के अनुसार तुलसी शंखचूड़ (जालंधर)-राक्षस की स्त्री थी। यह बड़ी पतिव्रता थी।

[१२६]

जनु नववय-नृप-मदन-भट
तिय-तन-धर-जय-हेतु—
हनत जु सर, उर-पुर उठत
उरज - समरपन - केतु ।

नववय-नृप-मदन-भट = यौवन-नरेश का कामदेव-रूपी योद्धा। उर-पुर = वक्षःस्थल-रूपी नगर। समरपन-केतु = समर्पण-केतु। वह ध्वजा, जो आक्रमणकारी के भय से साहस-हीन हो आत्मसमर्पण कर देने के उद्देश्य से दिखलाई जाती है।

[illegible] हेतु—
[illegible]

[१२४]

नेह-तल्यौ छबि-लपट तैं
भयौ कुरकुरौ काँच ;
तरकि जाइगौ तुरत उर
लगैं बिरह की आँच।

[१२५]

तुलसी-सी जिय पावनी,
तिय कुलसील-निधान—
हिय-हुलसी तुलसी-तरुहिं
पूजति, धरि पिय ध्यान।

तुलसी = इस सती का वैष्णवों में बड़ा मान है। पुराणों के अनुसार तुलसी शंखचूड़(जालंधर)-राक्षस की पत्नी थी। यह बड़ी पतिव्रता थी।

[१२६]

जनु नवबय-नृप-मदन-भट
तिय-तन-घर-जय-हेतु—
हनत जु सर, उर-पुर उठत
उरज - समरपन - केतु।

नवबय-नृप-मदन-भट = यौवन-नरेश का कामदेव-रूपी योद्धा। उर-पुर = वक्षःस्थल-रूपी नगर। समरपन-केतु = समर्पण-केतु। वह ध्वजा, जो आक्रमणकारी के भय से साहस-हीन हो आत्मसमर्पण कर देने के उद्देश्य से दिखलाई जाती है।

[१२७]

फिरि-फिरि उत खिंचि जात चख
रूप - रहचटैं - जोर ;
घूमि - घूमि पैरत चपल
ज्यों जल-अलि इक ओर ।

रहचटैं = चाह, चसका, लिप्सा । जल-अलि = पानी का भँवरा, जो काले कीड़े के रूप में खटमल-जैसा होता है । यह एक ही ओर घूम-घूमकर तैरता है ।

[१२८]

तरुन, तरुनई-तरु सरस
काटि न कलुस - कुठार ;
सींचि सुजीवन, सुमन धरि,
करि निज सफल बहार ।

कलुस = कलुष, पाप-कर्म । सुजीवन = (१) उत्तम जीवन, (२) उत्तम जल । सुमन = (१) अच्छा मन, उत्तम विचारों से पूर्ण विषय-वासना-रहित मन, (२) पुष्प । सफल = (१) फल-युक्त, (२) सार्थक । बहार = (१) आनंद, उचित संभोग, (२) वसंत ।

[१२९]

सित घन छनि-छनि झलमलति
जिमि दिनमनि-दुति प्रात ;
चंचल अंचल छलछलति
तिमि मुख - छबि अवदात ।

दिनमनि = सूर्य । अवदात = उज्ज्वल, पीत वर्ण का ।

[१३०]

को बिस - बुझ्यौ बताइ ?
चितवन-सर उर-तरु लगैं—
सु मन - सुमन सरसाइ,
नस-नस सींचत सरस रस।

को = कौन। मन-सुमन = मन-रूपी पुष्प। रस = (१) प्राणद रस, (२) प्रेम।

[१३१]

को तो-सो जग-बीच
करन, भयौ करिनी-करन ?
नाच रही सिर मीच,
तऊ न छाँड़ी बान निज।

करन = महाभारत के प्रसिद्ध वीर राजा कर्ण, जो कुंती के गर्भ से उत्पन्न सूर्य के पुत्र थे।

[१३२]

दुष्ट दुसासन दलमल्यौ
भीम भीमतम-भेस,
पाल्यौ प्रन, छाक्यौ रकत,
बाँधे कृस्ना - केस।

भीम = पांडव भीमसेन, जो महाभारत के युद्ध में पांडव-सेना के सेनापति थे। जब जुए में पांडवों के हार जाने पर दुष्ट दुर्योधन की आज्ञा से कौरव-सभा में दुःशासन ने द्रौपदी के केश पकड़कर खींचे थे, और वस्त्र खींचकर उसे नग्न करना चाहा था, तब महावीर भीम ने दुःशासन का रक्त-पान करने और उसी रक्त से द्रौपदी के बालों को बँधवाने का प्रण किया था। अंत में भीम ने अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन किया था। भीमतम = सबसे अधिक भयानक। कृस्ना = द्रौपदी।

[१३३]

सासन - कृषि तैं दूर
दीन प्रजा - पंछी रहैं,
सासक - कृषकन कूर
आर्डिनेंस - चंचौ रचौ ।

चंचौ = धोखा ।

[१३४]

भजत तजत निसि-संग तम,
लखि निसिपति-मुख-चंद,
अंग-नखत लघुदुति दुरत,
सुदुति परत दुतिमंद ।

अंग = पक्ष । नखत = नक्षत्र ।

[१३५]

पागल कौं सिच्छा कहा,
साधू कौं तरवार ?
कहा अंध कौं आरसी,
त्यागी कौं घर-बार ?

[१३६]

कला वहै साँची, करै
आपुनपौ जु बिकास ;
ज्यौं जोवन फूलैं-फलैं
पाइ भानु - परकास।

आपुनपौ = व्यक्तित्व। जीवन = प्राणि-मात्र।

[१३७]

समुझि धरम करि करम, धरि
न फल-चाह मन माँहँ ;
दिवस, रात, तरु देत ज्यौं
प्रभा, अँधेरो, छाँहँ।

[१३८]

स्याम-सुरँग-रँग-करन - कर
रग - रग रँगत उदोत ;
जग-मग जगमग जगमगत,
डग डगमग नहिं होत।

सुरँग-रँग-करन-कर = प्रेम-रूपी रंग की किरणों के हाथों द्वारा। उदोत = प्रकाश। जग-मग = जग का मार्ग। जगमग जगमगत = जग-मग-जगमग होता है, प्रकाश झिलमिलाता है। डग = पद। डगमग नहिं होत = नहीं डिगता, नहीं थरथराता, नहीं फिसलता।

[१३९]

पैरत - पैरत हौं थक्यौ
भव - सागर के बीच ;
कब पाऊँगौ देस वह,
जहाँ न जनम न मीच।

मीच = मृत्यु।

[१४०]

दुरगम देस - प्रबेस मैं
मानस मान न हार ;
राम - नाम - तारी सहज
खोलि देति दृढ़ द्वार।

मानस = मन। तारी = ताली।

[१४१]

सखी, दूरि राखौ सबै
दूती - करम - कलाप ;
मन-कानन उपजत - उठत
प्यार आप - ही - आप।

मन-कानन = मन-रूपी वन। प्यार = (१) प्रेम, (२) एक वृक्ष-विशेष, जिसका बीज चिरौंजी है। मध्यभारत एवं बुंदेलखंड में इस वृक्ष को अचार का वृक्ष भी कहते हैं। यह वृक्ष जंगल में अपने आप पैदा होता है, किसी को इसे रोपना नहीं पड़ता।

[१४२]

खरी झाँकरी हित - गली,
बिरह - काँकरी छाइ—
अगम करी तापै अली,
लाज - करी बिठराइ ।

लाज-करी = लज्जा-रूपी हाथी ।

[१४३]

केहि कारन कसकन लगी
भले मनचले लाल !
होइ आँख की किरकिरी,
रही जु पुतरी बाल ?

आँख की किरकिरी = आँखों में पड़कर खटकनेवाला तृण-कण, रज-कण आदि । वह, जिसे देखना न चाहें । आँख की पुतरी = प्रिय व्यक्ति ।

[१४४]

आवत हित-बित-भीख-हित
पति चख - झोरी डारि,
देहु नयन-कर कोप-कन,
मन - भाजन सुसँभारि ।

बित = धन । झोरी डालना = भिक्षा माँगने के लिये झोली उठाना, साधु या भिक्षुक हो जाना ।

[१४५]

अकबक[1] बकत बियोग,
अकबक[2] भूलीं अलि चतुर,
अकबक[3] भे गुरु लोग,
सौतिन हू अकबक[4]-बिकल।

१ अनाप-शनाप, अंडबंड। २ होश, चतुराई। ३ भौचक्के। ४ घबराहट।

[१४६]

चख-चर चंचल, चार मिलि,
नवल-बयस-थल आय––
हित-झँपान लै चित-पथिक
स्मर - गिरि देत चढ़ाय।

चर = (१) नौकर, (२) दूत। नवल-बयस = नवयौवन। झँपान = वह सवारी, जिसे चार आदमी कंधे पर लेकर पहाड़ पर चढ़ाते हैं। पहाड़ी स्थानों पर अमीर लोग इस पर चढ़कर जाते हैं।

[१४७]

बार[1] बित्यौ लखि, बार[2] झुकि
बार[3] बिरह के बार[4];
बार - बार[5] सोचति––'कितै
कीन्हीं बार[6] लबार[7]।'

१ दिन, समय। २ द्वार, दरवाज़ा। ३ बाला। ४ भार, बोझा। ५ फिर-फिर। ६ देर। ७ गप्पी, झूठा।

समय समुझि सुख - मिलन कौ, लहि सुख - चंद - उजास ,
मंद - मंद मंदिर चली लाज - सुखी पिय - पास ।

[१४८]

समय समुझि सुख-मिलन कौ,
लहि मुख - चंद उजास,
मंद - मंद मंदिर चली
लाज - मुखी पिय-पास ।

उजास = प्रकाश, प्रभा ।

[१४९]

गुंजनिकेतन - गुंज तैं
मंजुल वंजुल - कुंज,
बिहरैं कुंजबिहारि तहँ
प्रिय, प्रबीन, रस-पुंज ।

गुंजनिकेतन = भौंरा ।

[१५०]

मोह-मूरछा लाइ, करि
चितवन - करन - प्रयोग,
छबि - जादूगरनी करति
बरबस बस चित - लोग ।

करन = क्रिया-रूपी हाथ । लोग = व्यक्ति ।

[illegible]

[१४८]

समय समुझि सुख-मिलन कौ,

लहि मुख - चंद उजास,

मंद - मंद मंदिर चली

लाज - मुखी पिय-पास ।

उजास = प्रकाश, प्रभा ।

[१४९]

गुंजनिकेतन - गुंज तैं

मंजुल वंजुल - कुंज,

बिहरैं कुंजबिहारि तहँ

प्रिय, प्रबीन, रस-पुंज ।

गुंजनिकेतन = भौंरा ।

[१५०]

मोह-मूरछा लाइ, करि

चितवन - करन - प्रयोग,

छबि - जादूगरनी करति

बरबस बस चित - लोग ।

करन = किरण-रूपी हाथ । लोग = व्यक्ति ।

[१५१]

छुट्यौ राज, रानी बिकी,
सहत डोम - गृह द्वंद,
मृत सुत हू लखि प्रिया सौं
कर माँगत हरिचंद ।

द्वंद = दुःख, कष्ट । मृत = मरा हुआ ।

[१५२]

छुआछूत - नागिन - डसी
परो जु जाति अचेत,
देत मंत्रना - मंत्र तैं
गांधी - गारुड़ि चेत ।

मंत्रना-मंत्र = उपदेश अथवा सम्मति-रूपी मंत्र । गारुड़ि (गारुड़ी) = साँप का विष उतारनेवाला ।

[१५३]

बमचख मची कि बम दियौ
गांधी ओर चलाय,
पै दृढ़ छूआछूत - गढ़
ढहन चहत अरराय ।

बमचख = शोर । गढ़ = क़िला । अरराय = अररररर-शब्द करके ।

[१५४]

बात - झूलि रे फूल यों
निज श्री - भूलि न फूलि,
काल कुटिल कौ कर निरखि,
मिलन चहत तू धूलि।

बात = (१) हवा, वायु, (२) बातें। श्री = (१) शोभा, (२) संपत्ति। न फूलि = गर्व न कर।

[१५५]

होत अथिर रितु-सुमन-सम
सदा बाहरी रूप ;
पर उर - अंतर - रूप चिर
सदाबहार अनूप।

[१५६]

डारैं हास - फुहार - कन
करन-कियारिन माहिं—
सींचें कबि - माली सुरस,
रसिक - सुमन बिकसाहिं।

करन = कर्णों, कान। सुमन = (१) सुंदर मन, (२) पुष्प।

नोट—यह दोहा द्विवेदी-मेला (प्रयाग) में हास-परिहास-सम्मेलन के सुअवसर पर वहीं तत्काल लिखे और पढ़े गए दोहों में से है।

[१५७]

सतसंगति लघु - बंस हू
हरि अवगुन गुन देति ;
केहि न मधुर अधरन-धरी
बंसी बस करि लेति ?

लघु-बंस = (१) ओछा कुल, (२) तुच्छ बाँस ।

[१५८]

लैंन - दैंन सपनैं भयौ
बहु बिचार - मन माँहिं ;
आँख खुली, तौ लखि परयौ
हानि-लाहु कछु नाहिं ।

(महाकवि ग़ालिब के आधार पर)

आँख खुली = चेत हुआ । लाहु = लाभ ।

[१५९]

नंदलाल - रँग आल सौं
चीत - चीर रँग लेहु ;
जगत - आलजंजाल कौ
दीमक लगन न देहु ।

रंग = प्रेम । रँग आल = आल रंग, जिससे रँगे गए कपड़े पर दीमक नहीं लगती । चीत = चित्त । आलजंजाल = झंझट, बखेड़ा, माया ।

[१६०]

तू हेरत इत-उत फिरत,
वह घट रह्यौ समाय ;
आपौ खोवै आपनों,
मिलै आप ही आय ।

घट = हृदय । आपा = अहंत्व, अहंकार । आप ही = स्वयं परमात्मा ।

[१६१]

अंग-रंग नहिं लखि परति
रंचक चंपक - माल ;
जानि परति तब, जब लगति
लाल - हियैं नव बाल़ ।

(तुलसी और बिहारी के आधार पर)

रंचक = थोड़ा ।

[१६२]

धरि हरि-छबि हिय-कोस मैं
गोपी, हित - पट गोइ ;
बिरहा - डाकू, समय-ठग
तेहि हरि सकैं न कोइ ।

हिय-कोस = हृदय का ख़ज़ाना । हरि सकैं = हरण कर सकें ।

[१६३]

जगति जोति, प्रेमी पतँग
जारति प्रभा - लुभाय ;
हँसति दीपिका, नहिं लखति
जीवन ह्वै किन जाय !

किन = क्यों न ।

[१६४]

सुक सींचत स्रवननि सुधा
कहि-कहि प्रिय पिय-नाम ;
पुनि-पुनि सोइ रस-लालसा
मरिच खवावति बाम ।

सुक = तोता । स्रवननि = कानों में । मरिच = मिर्च । बाम = स्त्री ।

[१६५]

झीनैं अंबर झलमलति
उरजनि - छबि छितराइ ;
रजत-रजनि जुग चंद-दुति
अंबर तैं छिति छाइ ।

अंबर = वस्त्र । रजत-रजनि = चाँदनी रात । अंबर तैं = (१) आकाश से निकलकर, (२) बादल से निकलकर ।

[१६६]

जनु पटु जोबन - जौहरी
तिय-तन-रतन लुभाय—
लियौ चहत, तातैं गयौ
मन - स्वामी अकुलाय ।

पटु = निपुण, कुशल ।

[१६७]

सर लगि छत करि, हरि रकत,
हतप्रभ करत सुअंग ;
चितवन सुख भरि, चपल करि,
चित पर चीतत रंग ।

छत = घाव । हतप्रभ = प्रभा-हीन, श्री-विहीन । रंग = प्रेम-रंग ।

[१६८]

धाय धरति जौ अंग नहिं
मुरछा - अली अयान,
उमगि प्रान-पति - संग तौ
करतौ प्रान पयान ।

अयान = अजान । पयान = गमन ।

[१६९]

बिरह-उदधि-दुख-बीचि तैं
नारी - नाव बचाइ—
दियौ आइ पिय-ज्वार जनु
दरस - तीर दिखराइ ।

पिय-ज्वार = प्रिय पति-रूपी ज्वार ।

[१७०]

लहि पिय-रबि तैं हित-किरन
बिकसित रह्यौ अमंद ;
आइ बीच अनरस-अवनि
किय मलीन मुख - चंद ।

पिय-रबि = प्रिय पति-रूपी सूर्य । बिकसित = खिला । अनरस-अवनि = रुष्टता-रूपिणी पृथ्वी ।

[१७१]

जे जग जुग बिछुरे रहे
हम तैं हरिजन लोग ,
गाँधी-जोगी जोग किय
छन ही जुगल - सँजोग ।

जीवन - सम सतरंज सखि, सावधान ह्वै खेलि ,
बस जय लहिबो ध्यान धरि, तजि मायक रँगरेलि ।

[१७२]

गाँधीजू व्रत - रत भए,
भारत - मुख मुरझात ;
टूटत नेतन को हियो,
द्विज-हरिजन जुरि जात ।

[१७३]

अपनेहिं अंग अछूत करि
पर-अछूत मैं खोय,
जो जैसी करनी करै,
तैसो भरनी होय ।

[१७४]

जीवन-सम सतरंज सखि,
सावधान ह्वै खेलि,
बस जय लहिबो ध्यान धरि,
तजि मायक रँगरेलि ।

[illegible], सावधान है [illegible] ,
[illegible] नायक रँगरेलि ।

[१७२]

गाँधीजू ब्रत - रत भए,
भारत - मुख मुरझात ;
टूटत नेतन कौ हियौ,
द्विज-हरिजन जुरि जात।

[१७३]

अपनेहिं अंग अछूत करि
पर-अछूत भे लोय,
जो जैसी करनी करै,
तैसी भरनी होय।

[१७४]

जीवन-सम सतरंज सखि,
सावधान ह्वै खेलि,
बस जय लहिबो ध्यान धरि,
तजि मायक रँगरेलि।

[१७५]

कबिता-कामिनि-कंत बनि
कलिजुग के कबिराज—
डगर-डगर, घर-घर फिरत
टका - काज मुहताज ।

[१७६]

कबि-कोबिद पालत हुते
जे नरपाल सुजान,
पालत आज खुसामदी,
मोटर, गनिका, स्वान ।

[१७७]

मिलत न भोजन, नगन तन,
मन मलीन, पथ - बासु,
निरधनता साकार लखि
ढारति करुना आँसु ।

[१७८]

पुसकर-रज तैं मन-मुकुर
पावत इतौ उजास,
होंन लगत बिंबित तुरत
सुचि, अनंत परकास।

पुसकर = (१) पुष्कर-तीर्थ, जो अजमेर के पास है। यहाँ ब्रह्मा ने तप किया था। इसका माहात्म्य पद्म-पुराण और नारद-पुराण में गाया गया है, (२) कमल। रज = (१) धूल, (२) पराग।

[१७९]

हिय-प्रदीप-हित-जोति लहि
अग जग-बासी स्याम!
दृग-दरपन बिंबित करहु
निज छबि आठौं जाम।

[१८०]

जोति-उघरनी तैं अजहुँ
खोलि कपट-पट-द्वारु;
प्रभु, पंजर-पिंजर-परयौ
पंछी-प्रान उबारु।

पंजर-पिंजर = शरीर-रूपी पिंजड़ा।

[१८१]

बिरह-सिंधु उमड़्यौ इतौ
पिय - पयान - तूफ़ान ,
बिथा - बीचि बूड़त अली,
अथिर प्रान - जलजान ।

पिय-पयान-तूफ़ान = प्रिय पति का गमन-रूपी तूफ़ान । बिथा-बीचि = व्यथा की लहरों के बीच । प्रान-जलजान = प्राण-रूपी जहाज़ ।

[१८२]

खरी दूबरी तिय करी
बिरह निठुर, बरजोर ,
चितवन चढ़ति पहार जनु
जब चितवति मम ओर ।

[१८३]

सहज सकुच-सुखमा-सहित
सोहत रूप अनूप ;
लाजवती ललना लता
लाजवती - अनुरूप ।

सुखमा = शोभा, छटा । अनुरूप = समान ।

[१८४]

राधावर - अधरन - धरी
बाँसुरिया बौराइ—
प्रतिपल पियत पियूख, पै
विषम विषहिं बरसाइ ।

अधरन = ओठ । पियूख = अमृत ।

[१८५]

चंचल चित-गुन मैं अली,
अदभुत बात लखाय ;
चालक चतुर चलाँक ह्व
बाँधन चलि बँधि जाय !

चित-गुन = चित्त-रूपी रस्सी । चालक = चलानेवाला ।

[१८६]

है कलिहारी - तूल,
कलहारी, पिय-कल-हरनि ;
मुख तौ सुंदर फूल,
हियँ-मूल बिस-गाँठ पै ।

कलिहारी = एक बिषैला पौधा, जिसका फूल अत्यंत सुंदर होता है, और जड़ में बिषैली गाँठें रहती हैं ।

[१८७]

कहा समुझि इनकौं दियौ
लोयन लोयन - नाम,
लोय - सरिस बालम - बिरह
बरत जु बिना बिराम।

लोयन = लोगों ने। लोयन = लोचन। लोय = लौ।

[१८८]

सुरस - सुगंध-बिकास-बिँधि
चतुर मधुप मधु - अंध !
पदुमिनि - प्रेम - प्रबंध परि
लियौ ज्ञान कौ धंध !!

[१८९]

जोबन-मकतब तौ अजब
करतब करत लखाय;
पढ़ैं प्रेम-पोथी सुमति,
पै मति मारी जाय !

सुमति = बुद्धिमान्।

[१६०]

गुंजनिकेतन - गुंज - जुत
हुतौ कितौ मनरंज !
लुंज - पुंज सो कुंज लखि
क्यों न होइ मन रंज ?

गुंजनिकेतन = भौंरा । मनरंज = मनोरंजन करनेवाला । लुंज = ठूँठ ।

[१६१]

देस कला नव बिसतरत,
हरत ताप चहुँ ओर,
करत प्रफुल्ल प्रफुल्लचँद
चतुरन - चित्त - चकोर ।

प्रफुल्लचँद = बंगाल के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता सर प्रफुल्लचंद्र राय । कला, ताप, प्रफुल्ल, प्रफुल्लचंद, ये चारो श्लिष्ट पद हैं ।

[१६२]

भारत - भूधर तैं ढरति
देस - प्रेम - जल - धार,
आर्डिनेंस - इसपंज लै
सोखन चह सरकार !

भूधर = पहाड़, पर्वत । आर्डिनेंस-इसपंज = आर्डिनेंस-रूपी स्पंज । स्पंज झावें की तरह का एक प्रकार का बहुत मुलायम और रेशेदार पदार्थ होता है, जिसमें बहुत-से छोटे-छोटे छेद होते हैं । इन्हीं छेदों से वह बहुत-सा पानी सोख लेता है । और, जब यह दबाया जाता है, तब इसमें का सारा पानी बाहर निकल जाता है ।

[१६३]

काम, दाम, आराम कौ
सुघर समनवय होय,
तौ सुरपुर की कलपना
कबहूँ करै न कोय।

समनवय (समन्वय) = संयोग । कलपना = कल्पना ।

[१६४]

जटित सितारन - छंद,
अंगनि अंबर झलमलत ;
चली जाति गति मंद,
सजनि-रजनि मुख-चंद-दुति।

सितारन = (१) सलमा-सितारा, (२) तारागण । छंद = समूह । अंबर = (१) वस्त्र, (२) आकाश ।

[१६५]

बसि ऊँचें कुट छन सुमन !
मन इतरैए नाहिं ;
यह बिकास दिन द्वैक कौ,
मिलिहै माटी माहिं ।

कुट = (१) वृक्ष, (२) गढ़ । सुमन = (१) फूल, (२) अच्छे मनवाला । विकास = (१) प्रस्फुटन, खिलना, (२) उन्नति, वृद्धि । मिट्टी में मिलना = (१) टूटकर धूल में गिरना, (२) नष्ट होना ।

[१६६]

सुबरन होत खरो - खरो
लहैं आँच कौ संग ;
सुजनन पै त्यौं साँच तैं
चढ़त चौगुनौं रंग।

[१६७]

कविता, कंचन, कामिनी
करैं कृपा की कोर,
करनि पसारै कौन फिर
वा अनंत की ओर ?

[१६८]

फूटि-फूटि बँधि रव करतिं
बीच त्रिबेनी - बीच ;
फूटि - फूटि रोवतिँ लखत
मुकत नीच तैं नीच।

फूटि-फूटि = पृथक् हो-होकर। रव = आवाज़। बीच = लहर।

[१९९]

बंदि बिनायक बिघन-अरि,
न छन बिघन समुहाहिं ;
कर-इंगित के करत हीं
छुईमुई ह्वै जाहिं ।

समुहाहिं = सामना करें । इंगित करत ही = इशारा करते ही ।
छुईमुई = लाजवंती-नामक बेलि ।

[२००]

नंद-नंद सुख-कंद कौ
मंद हँसत मुख-चंद,
नसत द्वंद-छलछंद-तम,
जगत जगत आनंद ।

दोहों की अकारादिक्रम-सूची

दुलारे-दोहावली

पर

हिंदी के धुरंधर कवियों और विद्वानों की सम्मतियाँ

१. कवियों की सम्मतियाँ

व्रजभाषा के विद्यावयोवृद्ध कविश्रेष्ठ रायबहादुर लाला सीतारामजी बी० ए०—

सतसैया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर;
देखत को छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।
तिनसे बढ़ि दोहा रचे सुकबि दुलारेलाल!

छायावाद के श्रेष्ठ महाकवि पं० सुमित्रानंदनजी पंत—प्रायः प्रत्येक दोहा आपने मौलिक प्रतिभा, कोमल पद-विन्यास एवं काव्योचित भाव-विलास से सजाया है। शृंगार तथा प्रकृति-प्रधान दोहे मुझे अधिक पसंद हैं। तुलनात्मक दृष्टि से मध्यकालीन महारथियों की रचनाओं से वे होड़ लगाते हैं। आपकी सफलता के लिये मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

हिंदी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार, सुप्रसिद्ध समालोचक, विद्वद्वर राय-बहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०—पं० सुमित्रानंदनजी पंत ने दुलारे-दोहावली के संबंध में जो कुछ लिखा है, उससे मैं अक्षरशः सहमत हूँ।

सरस्वती-संपादक कविवर ठाकुर श्रीनाथसिंहजी—अगस्त की सुधा में भी मैंने आपके दोहे पढ़े। मुझे आपके सब दोहे पसंद आए। यदि अवसर मिला, तो शीघ्र ही मेरा इरादा आपके दोहों के बारे में एक छोटा-सा लेख लिखने का है।...आपका 'स्मर-बाण' दोहा बिहारी के दोहों से बाज़ी मार ले गया है! थोड़े शब्दों में बड़ी बात व्यक्त करने के लिये बिहारी प्रसिद्ध हैं। पर, जान पड़ता है, आप उनकी इस प्रसिद्धि पर चोट करेंगे।...मैं दोहों का विरोधी था...,पर आपके दोहों ने इस दिशा में भी मेरी रुचि उत्पन्न कर दी है।

व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि श्रीश्यामनाथजी 'द्विजश्याम'—

सुधुनि, सुलच्छन, गुन-भरे, भूषन-धरे, रसाल,
शत दोहा रचि सत सुयश लह्यो दुलारेलाल।

हिंदी-संसार में व्याकरण के सबसे बड़े पंडित, व्याकरणाचार्य कविवर पं० कामताप्रसादजी गुरु—आपकी रचना प्रशंसनीय है। आपके रचे हुए दोहे पढ़ने से अनेक

स्थानों में बिहारीलाल का स्मरण हो आता है... । कुछ दिनों में 'दुलारे-सतसई' तैयार होकर हिंदी-साहित्य का गौरव बढ़ाएगी ।

हिंदी के विद्यावयोवृद्ध लेखक, विद्वद्वर रायबहादुर डॉक्टर हीरालालजी डी० लिट्०, रिटायर्ड डिप्टी-कमिश्नर, भूतपूर्व सभापति नागरी-प्रचारिणी सभा—इसमें संदेह नहीं कि आपके दोहे बिहारी के दोहों से स्पर्धा करते हैं । इस प्रकार के सात शतक तैयार होने पर बिहारी की सतसई के समान 'दुलारे-सतसई' प्रस्तुत हो जायगी । सुनता हूँ, किसी दूसरे संस्करण के लिये आप एक विस्तृत भूमिका भी लिख रहे हैं, जिसमें व्रजभाषा-काव्य पर अच्छा प्रकाश डाला है, सो योग्य ही है ।

कवि-भूषण कविराज पं० बिहारीलालजी भट्ट—इसमें जितने दोहे आए हैं, वे सभी एक-से-एक अपूर्व जँचते हैं । कोई भी दोहा ऐसा नहीं, जो अलंकारों के चमत्कार से ख़ाली हो, तिसमें रूपक के रंग का तो ढंग ही निराला है...।

सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ और समालोचक, कविवर पं० किशोरीदास वाजपेयी—फिर आप मुझे अपनी 'कवि-कुटीर' पर लिवा ले गए । कविजनोचित स्थान तथा ठाट-बाट देखकर तबीयत ख़ुश हो गई ।.........'दुलारे-दोहावली' की चर्चा छिड़ी । यह कितने सौभाग्य की बात है कि इस ज़माने में भी व्रजभाषा में ऐसे-ऐसे रत्न पैदा हो रहे हैं ! यह जानकर किसे प्रसन्नता न होगी कि भार्गवजी की व्रजभाषा-कविता पर खड़ी बोली के स्तंभ श्रीनिरालाजी भी क़ुर्बान हैं, और श्रीसिलाकारीजी उसका एक बृहत् भाष्य बना रहे हैं ! 'रत्नं समागच्छतु कांचनेन ।' स्वागत है ! इसी सिलसिले में आपने अपनी दोहावली के कुछ उत्तम दोहे सुनाए । मैंने भी दाद दी । तब आपने बतलाया कि "ये दोहे तो चुने हुए नहीं हैं, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं ।" यह सुनकर और भी आश्चर्य हुआ । इसी समय आपने बतलाया कि 'लाज-लगाम'वाले दोहे को तथा इसी प्रकार के अन्य कितने ही दोहों को प्रखर समालोचक ठाकुर श्रीनाथसिंहजी बिहारी की कृति से भी बहुत बढ़कर समझते हैं । यह सुनकर मेरी छाती गर्व से तन गई, क्योंकि मैं तो व्रजभाषा का पक्षपाती हूँ ही । ठाकुर श्रीनाथसिंहजी हरिऔधजी को भी कुछ नहीं समझते, जो सपार्टी व्रजभाषा को मुर्दा भाषा बतलाते हैं, जब 'दुलारे-दोहावली' की व्रजभाषा-कविता पर इस तरह लट्टू हैं, तब और क्या बाक़ी रहा ? जादू वह, जो सिर पर चढ़कर बोले । मैंने भी आपकी कविता की तारीफ़ की ; ख़ूब की । अब आपने बढ़िया ख़रबूज़े और शर्बत मँगाया । परंतु मुझे ख़रबूज़ों में कुछ स्वाद ही न आया ! यह ख़रबूज़ों का दोष न था, वे तो बढ़िया थे । बात यह थी कि पहले तो भार्गवजी की मीठी-से-मीठी कविता का स्वाद लिया, जिसके आगे 'दाख दुरी, मिसरी मुरी औ' सुधा रही सकुचाय ।' उसके बाद वे ख़रबूज़े आए । तब भला, कैसे अच्छे लगें ? अंगूर चखकर निबौरी कौन-सी जीभ पसंद करेगी ? परंतु भार्गवजी के निर्हेतुक प्रेम ने उनमें और अधिक मिठास पैदा कर दी । बड़े स्वाद से खाए, मैंने भी और भार्गवजी ने भी । फिर एक-एक गिलास शर्बत पिया । अब मैंने

बिदा माँगी । खड़े-खड़े भी कुछ ऐसी ही बातें होती रहीं । बड़े प्रेम से आपने बिदा किया ।

भूतपूर्व 'माधुरी'-संपादक कविवर पं० रामसेवक त्रिपाठी—एक दीर्घ काल के पश्चात् इतनी दिव्य एवं सुंदर चीज़ नज़र आई । दोहा-जैसे छोटे छंद में अमूल्य भावों का सफल चित्रण देखकर तबीयत फड़क उठी । कुछ दोहे निस्संदेह 'बिहारी' की टक्कर के हैं । शेष दोहे भी वर्तमान हिंदी-जगत् में अपना सानी नहीं रखते । आपकी अद्वितीय काव्य-कुशलता को देखकर मन-ही-मन मुग्ध हो रहा हूँ । इस स्तुत्य सफलता पर मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए । मेरा विश्वास है, इस पुस्तक का सर्वत्र आदर होगा । इतना ही नहीं, बल्कि जैसे-जैसे समय बीतता जायगा, इसका आदर बढ़ता जायगा । पक्षपात और द्वेष का चश्मा उतारकर जो भी योग्य सज्जन 'दोहावली' का अवलोकन करेंगे, उन्हें भी मेरी ही भाँति कहना पड़ेगा ।

कविवर श्रीलक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' बी० ए०—आधुनिक ब्रजभाषा की पुस्तकों में इस दोहावली का सर्वश्रेष्ठ स्थान है । सभी दोहे सुंदर और सुललित हैं । विषय-निर्वाह, पद-योजना, ध्वनि और अलंकार के लक्षणों से युक्त इस रचना का हिंदी-संसार यथेष्ट आदर करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है । आपकी भाषा में सरसता है, प्रवाह है, और एक अनूठापन है, जो प्राचीन कवियों की रचनाओं में भी पूर्ण रूप से नहीं मिलता । बिहारी और मतिराम के दोहों से भी आपके कुछ दोहे, भाव और सरसता की दृष्टि से, बहुत बढ़ गए हैं । चमत्कार और मौलिकता आपकी रचनाओं का प्रधान गुण है ! आशा है, आपकी दोहावली ब्रजभाषा-साहित्य के भांडार का एक अति उज्ज्वल रत्न बनेगी ।

ब्रजभाषा के कविवर पं० उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' एम्० ए०—

I am extremely delighted with its freshness, strength, originality and beauty and in my opinion it is a work of permanent interest, wonderful power and marked genius. You have originated a new style of your own in Brija Bhasha and I consider you to be the Poet of the foremost rank.

ब्रजभाषा के कविश्रेष्ठ पं० शिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस'—दुलारे-दोहावली मिली, उसे पढ़ा । रूपकालंकारादि से दोहे पूर्ण हैं । आपने बिहारी के साथ कविता की समानांतर-रेखा खींची है । संकुचित स्थानों में, जहाँ कहीं आप बिहारी से मिलते देख पड़ते हैं, वहाँ भी आपने भिन्न भावांकन के साथ पृथक् ही रहने का अच्छा प्रयास किया है । आपके दोहों में भाव बढ़िया हैं, और वे अनुप्रास तथा यमक से जगमगा रहे हैं ।

दोहा की सकरी गली में साधारणतः सिकुड़कर चलना पड़ता है, पर वहाँ भी आपने कविता को भूषित वेश में निकाला है । अस्तु । यह आपकी रचना सराहनीय है । ब्रजभाषा में कविता करने के लिये आपको बधाई है ।

महाकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त—'दुलारे-दोहावली' की रचना जिस परंपरा को लेकर की गई है...,वह आजकल के लिये विलक्षण वस्तु है, इसमें संदेह नहीं, किंतु मुझे आशा नहीं कि वह परंपरा फिर भी आगे बढ़ सकेगी। उसे आयत्त करने की शक्ति सहज नहीं। दुलारेलालजी ने पूर्व जन्म के संस्कार से ही उसे पाया होगा। उनका शब्द-शिल्प देखकर आनंद के साथ-साथ कौतूहल और विस्मय भी होता है। उनकी इस प्राचीन शैली की सफलता में ही एक नूतनता भरी है। उनकी सूझ-बूझ की नवीनता का कहना ही क्या? आज लोग भले ही उन पर टीका-टिप्पणी करें, परंतु हिंदी-काव्य के दोहा-साहित्य के इतिहास में प्राचीनों के साथ उनका भी एक विशेष स्थान होगा ही। एक मित्र के नाते उसके लिये मैं उन्हें सहर्ष बधाई देता हूँ।

सुकवि श्रीमती रामकुमारी चौहान—इसमें कोमल-कांत पदावली का कमनीय कोष है। भाव और भाषा में भली भाँति भव्यता भर दी गई है। बिहारी के बाद 'व्रज'-वाटिका को ससौरभ, सरस और वासंती बनाने का श्रेय दोहावली ही को मिलता है।

कवि-सम्राट् पंडित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'—

काके दृग बिलसे नहीं लहे सु-मुकुता-हार,
देखि दुलारेलाल-कृत दोहावली-दुलार?
बनी सरस दोहावली, बरसि सुधा-रस-धार,
कौन दुलारेलाल के दिल कौ लहे दुलार?

कविवर मुंशी अजमेरीजी दुलारे-दोहावली में 'आठ ठाट कौ मेल' पाते हैं—

बनक बिहारीलाल की, अरु रहीम की उक्ति,
मधुराई मतिराम की, त्यों जमाल की जुक्ति।
पदमाकर की पद-अवलि, रसनिधि की रस-नीति;
बिदित बृंद की बिग्यता, रतनाकर की रीति।

अजमेरी

कविवर प्रोफ़ेसर रामदास गौड़ एम्० ए०—२०० दोहों तक आँखें पहुँच गईं। बढ़े चलिए। ७०० पूरे कीजिए। बड़े बाँके दोहे हैं। राजनीतिक दोहे महत्त्व के हैं। रचना-काल के अंतःसाक्षी भी हैं। मुझे तो आपके कई अनुपम दोहे बिहारी से भी चोखे लगते हैं। आजकल के विषयों का समावेश करके आपने इन्हें समयानुकूल बना दिया है। रत्नाकर-जी ऐसा नहीं कर सके।

व्यंग्य-वाचस्पति सुकवि पं० रामनारायण शर्मा—दुलारे-दोहावली के कल्पना-चित्रों को देख स्वयं चित्र-सा बन गया हूँ। 'चतुर चितेरे' को ऐसे चित्रांकन के उपलक्ष्य में बधाई! प्रत्येक दोहे में अपूर्व उड़ान है, जो पिछले कवियों में कदापि नहीं पाई जाती।

२. विद्वानों की सम्मतियाँ

सरस्वती-संपादक पं० देवीदत्तजी शुक्ल—मैं ब्रजभाषा नहीं जानता, तो भी इसे पढ़ गया। कई दोहे बहुत सुंदर जान पड़े। १५, २७, २८, ३३, ३६, ५२, ६१, ६२, ७६, ७७, ८३ नंबर के दोहे मुझे अधिक पसंद आए। यदि आपके दोहे खड़ी बोली में होते, तो उनसे राष्ट्र-भाषा का निस्संदेह गौरव बढ़ता, तथापि सफल कविता-रचना के लिये आपको बधाई है।

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक पं० भगीरथप्रसादजी दीक्षित—दोहे अत्युच्च कोटि के हैं। इस छोटे-से संग्रह में सब रसों का समावेश किया गया है। सामयिक प्रगति को भी कई दोहों द्वारा अच्छा व्यक्त किया गया है। उदाहरण-स्वरूप एक दोहा यहाँ प्रस्तुत है—

यौरप-दुःशासन निठुर खींचत लखि निधि-चीर—
जन्मभूमि-कृष्णा करी 'मोहन' अभय-शरीर ॥ ५२ ॥

शांत-रस का भी एक दोहा अवलोकन कीजिए—

नीच मीच कौं मत कहै, जनि उर करै उदास ;
अंतरंगिनी प्रिय अली पहुँचावति पिय-पास ॥ ६८ ॥

इन उदाहरणों द्वारा हम भार्गवजी की उत्कृष्ट रचना का अनुमान कर सकते हैं। आपने इसका द्वितीय संस्करण और भी परिष्कृत रूप में निकाला है। हम इस एक शतक को शीघ्र ही सप्तशतक के रूप में देखने के अभिलाषी हैं।

पंजाब के प्रसिद्ध विद्वान्, स्त्री-शिक्षा के स्तंभ तथा कन्या-महाविद्यालय के संस्थापक लाला देवराज—मैं समझता था, अब ब्रजभाषा में वैसी रस-भरी रचना नहीं हो सकती, पर आपकी दोहावली को देखकर मैं कुछ और ही समझने लगा हूँ। क्या आपके रूप में बिहारी ने अवतार तो नहीं ले लिया! 'दुलारेलाल' और 'बिहारीलाल' नाम बहुत मिलते हैं। काम में भी सादृश्य है। नामों के अक्षर और मात्राएँ भी समान। आप बिहारी के आधुनिक संस्करण तो नहीं? दोहे सर्वथा अच्छे हैं। दोहावली क्या सतसई में परिणत होगी? हो!

श्रीपरशुराम मेहरोत्रा एम्० ए०—श्रीमैथिलीशरणजी के शब्दों में मैं भार्गवजी के शब्द-शिल्प एवं सूझ-बूझ की नवीनता से प्रभावित हुआ हूँ। 'दुलारे-दोहावली' लिखकर भार्गवजी ने अपने को एक उच्च कोटि का कवि सिद्ध किया है। उक्त पुस्तिका के अधिकांश दोहे भाव और माधुर्य-पूर्ण हैं।

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पं० हनूमानप्रसाद शर्मा वैद्यशास्त्री—दुलारे-दोहावली बनारस में बहुत पसंद की गई। कुछ लोगों का कथन है कि कहीं-कहीं इतना सुंदर भाव आपने भर दिया है कि महाकवि बिहारीलाल भी उतना सुंदर भाव नहीं भर सके। मेरी भी यही सम्मति है।

हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका कुमारी अमृतलता स्नातिका, प्रभाकर—मैं 'दुलारे-दोहावली' की कितने दिनों से प्रशंसा सुनकर देखने को लालायित हो रही थी। मेरे अहो-भाग्य हैं कि मुझे भी इस पुस्तिका का पीयूष पान करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके एक-एक पद्य में अलंकारों की झड़ी तथा ब्रजभाषा का सौष्ठव निहारकर श्रीभार्गवजी की अलौकिक कृति पर मन गद्गद हो जाता है। मैं तो समझ रही थी कि कवि बिहारीलाल के साथ ही ब्रजभाषा की कविता लुप्त हो गई। पर मेरा मनोभाव ही ग़लत निकला। दुलारे-दोहावली के ६६, ६७ नंबर के दोहे बिहारी से भी भावों में कहीं अधिक बढ़े-चढ़े हैं। मैं इस कविता-कानन के मधुकर की काव्य-कुशलता पर उन्हें हार्दिक बधाई देती हूँ।

पंजाब के सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीयुत संतरामजी बी० ए०—मित्र, आपने तो सचमुच कमाल कर दिया। मैं नहीं समझता था, आप ऐसे अच्छे दोहे लिख सकते हैं। मैं न तो कवि हूँ, और न काव्य-मर्मज्ञ, केवल मनोरंजन के लिये कभी-कभी कविता का रसास्वादन कर लिया करता हूँ। आपकी दोहावली पढ़कर मुझे बड़ा ही आनंद आया। कोई-कोई दोहा तो इतना अच्छा है कि पढ़ते ही अनायास 'वाह-वाह' निकल पड़ती है। पुराने कवियों के दोहों में जो-जो उत्तम गुण माने जाते हैं, वे सब आपके दोहों में मिलते हैं। अब यह कहना कठिन है कि केवल प्राचीन कवि ही अच्छे दोहे लिख गए हैं, नवीन कवि वैसे नहीं लिख सकते। मेरी स्त्री ने भी आपकी दोहावली को बहुत पसंद किया है।

श्रीकालीचरण चटर्जी एम्० ए० हेडमास्टर—आपको इस अनुपम कृति के लिये हार्दिक बधाई। यह असंभव है कि इस उत्कृष्ट रचना को पढ़कर कविवर श्रीबिहारीलाल की 'सतसई' का ध्यान न आवे। आपकी कविता मर्मस्पर्शी तथा अत्युच्च कोटि की है। कितने ही दोहे तो हिंदी-साहित्य में बेजोड़ हैं! इनमें थोड़े-से ही शब्दों में गहन विचार कूट-कूटकर भरे गए हैं। मुझे विश्वास है कि जब तक हिंदी-भाषा इस संसार में प्रचलित रहेगी, तब तक आपके दोहे हिंदी-साहित्य-भांडार के अमल, अमोल रत्न बने रहेंगे। साहित्य-सम्मेलन आदि की परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में इस पुस्तक को शीघ्र ही स्थान मिलना चाहिए।

पं० जीवनचंद जोशी एम्० ए०—आपने 'दोहावली' लिखकर हिंदी-संसार में अच्छी हलचल मचा दी है। जिस रचना में श्रीसुमित्रानंदन पंतजी को 'प्राचीन काव्यादर्श' के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं, जिस रचना को श्रीसूर्यकांत त्रिपाठीजी ब्रजभाषा-साहित्य की सर्वोत्तम कृति समझते हैं, जिस रचना के दोहे रायबहादुर श्रीहीरालालजी की सम्मति में बिहारी के दोहों से स्पर्धा करते हैं, जिन दोहों में ठाकुर श्रीनाथसिंह-से दोहा-विरोधियों को भी अपनी ओर आकृष्ट करने की शक्ति है, जिन दोहों पर श्रीलोकनाथजी टीका लिखना चाहते हैं, ऐसी रचना के बारे में दो सम्मतियाँ हो ही नहीं सकतीं। जो श्रेय अन्य कवियों को सप्तशती लिखकर प्राप्त हुआ है, वह, ज्ञात होता है, आप शतक

लिखकर ही पा लेंगे । इस सफलता के लिये बधाई देता हूँ । मैं कभी-कभी यह सोचता हूँ कि आपकी 'दोहावली' (शतक) पर ही जब काव्य-मर्मज्ञ इस प्रकार मुग्ध हैं, और भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, तो आपकी सप्तशती के प्रकाशित होने पर हिंदी-संसार में न-जाने कैसी क्रांति उपस्थित होगी ! पदार्थवाद के इस युग में जब कि पुराने विचार, पुरानी परिपाटी, पुराने आदर्श, और तो और, पुराण पुरुष के अस्तित्व पर भी आक्रमण हो रहे हैं, आपका प्राचीन आदर्शों को अपनाना और भारतीय संस्कृति के इस उपेक्षा काल में "नंद दुलारेलाल" से हृदय में निवास करने की प्रार्थना करना वास्तव में बड़े ही साहस का कार्य है । आपने अंध-अनुकरण, अनुवाद और अनुराग से दूर रह स्वकीय अनुभवों को ही सरल, सुगम रूप में हिंदी-संसार के समक्ष रक्खा है, यह सर्वथा प्रशंसनीय है । हिंदी को अभी आपसे बहुत आशाएँ हैं ।




RA 8.1,BHA-D
37482

